आयुर्वेद एवं वनौषधि सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 3.0

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

आयुर्वेद एवं वनौषधि सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखकगण

श्री सत्यम् शुक्ल — आचार्य, यू.जी.सी. नेट (शिक्षक ऋग्वेद शाकल)

श्री चिदानन्द शास्त्री — आचार्य, यू.जी.सी. नेट (शिक्षक ऋग्वेद शाकल)

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा

एम०ए०, एम० फिल०, पी०एचडी०(शैक्षिक सहायक)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग एवं टङ्कण -

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN : मूल्य :

संस्करण : 2024 प्रकाशित प्रति : PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

आयुर्वेद एवं वनौषधि पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

प्राक्कथन

आयुर्वेद एक अनादि एवं शाश्वत जीवन विज्ञान शास्त्र है, जिसमें धर्म अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्विध पुरुषार्थ के मूल साधनभूत आरोग्य का प्रतिपादन किया गया है। आयुर्वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त इतने सामान्य, व्यापक, जनजीवनोपयोगी एवं सर्वसाधारण के लिए हितकारी हैं कि सरलतापूर्वक उन्हें अमल में लाकर यथाशीघ्र आरोग्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अतः शारीरिक, मानसिक, एवं बौद्धिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आयुर्वेद की उपयोगिता सुविदित है। आयुर्वेद केवल चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु यह शरीर विज्ञान, मानव विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र एवं धर्मशास्त्र का एक ऐसा अद्भुत समन्वित स्वरूप है जो सम्पूर्ण जीवन के अन्यान्य पक्षों को व्याप्त कर लेता है। अतः निःसन्देह यह एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है।

शास्त्रों में आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति (व्युत्पत्ति) निम्न प्रकार से मिलती है-

आयुर्वेदयति बोधयति इति आयुर्वेदः।

अर्थात् यह शास्त्र आयु का वेदन (बोध) या ज्ञान कराता है, अतः यह आयुर्वेद कहलाता है। इसमें उत्तर पद 'विद् ज्ञाने' धातु से निष्पन्न है। अर्थात् ज्ञान अर्थ में प्रयुक्त 'विद्' धातु से वेद शब्द बना है। इसी प्रकार आचार्य उल्हण भी ज्ञानार्थक विद् धातु से आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति निम्न प्रकार करते हैं-

आयुर्विद्यते ज्ञायतेऽनेनेति आयुर्वेदः।

आयु इससे जानी जाती है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। यहां विद्यातु ज्ञानार्थक है।

आयुर्विद्यते विचार्यतेऽनेन वेत्यायुर्वेदः।

आयु का इसके द्वारा विचार (विवेचन) किया जाता है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। यहाँ विचारणा अर्थ में विद् धातु का प्रयोग है।

आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वाऽऽयुविन्दतीत्यायुर्वेदः । (सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान १/१५)

प्रतिपाद्य विषय के रूप में आयु इसमें विद्यमान है, अतः इसे आयुर्वेद कहते हैं। इसीप्रकार

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।

मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः' स उच्यते ॥

(चरक संहिता, सूत्रस्थान १/४१)

जिस शास्त्र में हित आयु, अहित आयु, सुख आयु, दुःख आयु इन चार प्रकार की आयु के लिए हित (पच्य) अहित (अपथ्य), इस आयु का मान (प्रमाण और अप्रमाण) तथा आयु का स्वरूप प्रतिपादित हो वह आयुर्वेद कहलाता है।

आयुर्वेद शास्त्र केवल भौतिक तत्वों तक ही सीमित नहीं है, अपितु आध्यात्मिक तथ्यों के विवेचन में भी अपनी मौलिक विशेषता रखता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के आद्य स्रोत वेद तथा उपनिषद् के बीज ही आयुर्वेद में प्रसार को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार मानव जीवन में आयुर्वेद एवं वनौषधियों के महत्व को स्पष्टतया देखा जा सकता है।

आयुर्वेद में स्वयं अनुशासन का पालन करते हुए अपने आप को स्वस्थ रखने पर भी विशेष अवधान दिया गया है जैसे

भोजनान्ते पिबेत् तक्रं दिनान्ते च पिबेत् पयः।

निशान्ते च पिबेत् वारि किं वैद्येन प्रयोजनम्॥ (स्वस्थवृत्तम्)

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।

सर्वमेव परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्॥

इस प्रकार आयुर्वेद में स्वयं अनुसासन से स्वास्थ्य की रक्षा करने के निर्देश प्राप्त होते हैं।

ग्रन्थ सङ्कलन में आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय, अष्टाङ्ग परिचय, प्राथमिक रोगोपचार, वैद्यकीय सुभाषितों का सङ्ग्रह, अमरकोष का वनौषधि वर्ग, ऋग्वेद में प्राप्त औषधिसूक्त आदि विषयों से सम्बद्ध पाठ्यसामग्री को सङ्कलित करने का प्रयत्न किया गया है।

ऋग्वेद के कथनानुसार **कृषिन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वनप वृङ्क्ते चरित्रे।** अर्थात् भूमि को खोदता हुआ हल का फाल कृषक को फल देता है उसी प्रकार यह सङ्कलित पाठ्यसामग्री भी राष्ट्रीय स्तर पर आयुर्वेद एवं वनौषधि सहायक के अध्येताओं तथा अन्य सभी पाठकों की स्वज्ञान वृद्धि के साथ-साथ रोजगारपरक ज्ञान में भी अत्यन्तोपयोगी सिद्ध होगी।

क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः।

कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फलम्॥

पं. सत्यम् शुक्ल

पं. चिदानन्द शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं		पृष्ठ संख्या
इकाई – 1	**आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय**	1 - 7
1.	चरकसंहिता	
2.	सुश्रुत संहिता	
3.	अष्टाङ्गहृदय	
इकाई – 2	**अष्टाङ्ग परिचय**	8 - 11
1.	कायचिकित्सा	
2.	बालतन्त्र या कौमारभृत्य	
3.	ग्रहचिकित्सा (भूतविद्या	
4.	ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा (शालाक्यतन्त्र)	
5.	शल्यतन्त्र	
6.	दंष्ट्राविषचिकित्सा (अगदतन्त्र	
7.	जराचिकित्सा (रसायनतन्त्र)	
8.	वृषचिकित्सा (वाजीकरणतन्त्र)	
इकाई – 3	**प्राथमिक रोगोपचार**	12 - 22
1.	मानसिक रोग	
2.	वैदिक मन्त्रों के द्वारा मनोपचार	
3.	त्रिदोष परिचय	
4.	रोग- उपचार- वातज्वर	
इकाई – 4	**वैद्यकीय सुभाषित संग्रह**	23 - 40
इकाई – 5	**अमरकोषः – वनौषधिवर्ग**	41 - 44
इकाई – 6	**ऋग्वेद का औषधिसूक्त**	45 - 52

इकाई - 1

आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय

१. चरकसंहिता

पुनर्वसु आत्रेय द्वारा उपदिष्ट एवं उनके शिष्य अग्निवेश द्वारा प्रणीत अग्निवेशतन्त्र महर्षि चरक द्वारा प्रतिसंस्कृत होने के बाद चरकसंहिता के नाम से आयुर्वेदजगत में विख्यात हुआ। इसके पश्चात् कालपरिणामवश खण्डित हुए इस ग्रन्थ के लगभग एक तिहाई भाग (चिकित्सास्थान-१७ अध्याय एवं कल्पस्थान और सिद्धिस्थान) का दृढबल द्वारा सम्पूर्ण करते हुए पुनः प्रतिसंस्कार किया गया। सम्प्रति यह ग्रन्थ आयुर्वेदवाङ्मय में कायचिकित्सा के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है जिसकी महत्ता का आख्यान परवर्ती आचार्यों ने **"चरकस्तु चिकित्सके"** कहकर किया है। यद्यपि इस ग्रन्थ में अष्टाङ्ग आयुर्वेद के सभी विषयों का न्यूनातिरेक रूप से वर्णन प्राप्त होता है तथापि कायचिकित्सा का विशेष विवेचन होने के कारण ही इस ग्रन्थ को कायचिकित्सा के आकर ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

चरकसंहिता के नाम से प्रसिद्ध यह ग्रन्थ ८ स्थानों और १२० अध्यायों (सूत्रस्थान-३०, निदानस्थान-८, विमानस्थान-८, शारीरस्थान-८, इन्द्रियस्थान-१२, चिकित्सास्थान-३०, कल्पस्थान-१२ एवं सिद्धिस्थान-१२ अध्यायों) में विभक्त है जिसके सूत्रस्थान में स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्यरक्षण एवं रोगियों के रोगनिवारण के लिए अभीष्ट आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों को सूत्रात्मक शैली में गुम्फित किया गया है तदुपरान्त निदानस्थान में छः शारीरिक एवं दो देहमानस कुल आठ रोगों का निदानपञ्चकात्मक वर्णन किया गया है।

चिकित्सा में दोष-भेषज-देश-काल-बल-शरीर-सार-आहार-सात्म्य-सत्त्व-प्रकृति-वय-अग्नि आदि भावों की विविध अवस्थाओं के आधार पर अंशांशकल्पना करके तदनुसार चिकित्सा करने पर ही सम्यक् चिकित्सालाभ मिलता है, अतः इनके अंशांशविकल्प को विमानस्थान में सुनियोजित तरीके से दर्शाया गया है, ताकि चिकित्सक इसके द्वारा सम्यक् मार्गदर्शन प्राप्त करके चिकित्सा में सफल हो सके।

सत्त्वात्मशरीर को इकाई रूप में चिकित्सा का अधिष्ठान मानने वाले आचार्य चरक ने इन तीनों का विशद विवेचन शारीरस्थान में किया है तथा रोगोत्पत्ति में शरीर और मन के पारस्परिक सम्बन्ध को स्थापित करते हुए कहा है। यथा- शरीरं हि सत्त्वमनुविधीयते सत्त्वं च शरीरम्॥ (च.शा.४/३६)

चिकित्सा करते समय बहुत बार असाध्य रोगग्रस्त रोगियों की मृत्यु हो जाती है, ऐसी स्थिति में चिकित्सक को अपयश का सामना करना पड़ता है, यथा- अर्थविद्यायशोहानिमुपक्रोशमसंग्रहम्। प्राप्नुयात् नियतं वैद्यो योऽसाध्यं समुपाचरेत्॥ (च.सू.१०/८) अतः मृत्युसूचक लक्षणों का चिकित्सक को बोध कराने वाले इन्द्रियस्थान का विवेचन चिकित्सास्थान से पूर्व किया गया है। तदुपरान्त चिकित्सास्थान में सर्वप्रथम रोगप्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि करके शरीर और मन को बल प्रदान करने वाली रसायन और वाजीकरण विधाओं को दो पृथक्-पृथक् अध्यायों में वर्णित करके तत्पश्चात् ज्वर आदि अन्य रोगों का निदान-चिकित्सा और पथ्यापथ्य सहित विस्तृत वर्णन किया है।

चूंकि सभी रोगों की चिकित्सा में संशोधन (पञ्चकर्म) का भूरिशः प्रयोग किया गया है अतः पञ्चकर्म का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करने के लिए चिकित्सास्थान के पश्चात् पृथक्शः कल्पस्थान और सिद्धिस्थान की रचना की गई है। इसके पीछे आचार्य का सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि संशमन चिकित्सा से नष्ट हुए रोग पुनः उत्पन्न हो सकते हैं किन्तु संशोधन द्वारा नष्ट हुए रोग पुनः उत्पन्न नहीं होते। यथा- दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः। जिता संशोधनैर्ये तु न तेषां पुनरुद्भवः॥ (च.सू.१६/२०-२१)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि चरकसंहिता में विषयों का यथास्थान सन्निवेश होने के कारण ही यह संहिता चिकित्साजगत में महत्त्वपूर्ण स्थान को प्राप्त है। इस संहिता में कायचिकित्सा के अन्तर्गत समाविष्ट सभी पुरातन, वर्तमानकालिक एवं भविष्य में उत्पन्न होने वाले रोगों के चिकित्सासूत्र उपलब्ध हो जाते हैं, आवश्यकता इस बात की है कि उन सूत्रों को समझकर एवं सतत अनुसन्धान द्वारा दोषविकृति (दोषांशबल), विकारप्रकृति, अधिष्ठान और निदान के आधार पर विविध नैदानिक विधाओं, चिकित्सा के तरीकों एवं औषधियों का सम्यक् प्रयोग एवं निरन्तर अन्वेषण किया जाए, जिसका सूत्रात्मक संकेत अधोलिखित सूत्र में निर्दिष्ट है। यथा-

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन।

न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥

स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः।

स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून्॥

तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च।

समुत्थानविशेषांश्च बुद्धा कर्म समाचरेत्॥ (च.सू.१८/४४-४६)

चरकसंहिता का आद्यन्त अध्ययन किये बिना कायचिकित्सा के साङ्गोपाङ्ग ज्ञान की प्राप्ति कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कुशल कायचिकित्सक बनने के लिए इस संहिता का वाक्यशः, वाक्यार्थशः एवं अर्थावयवशः अध्ययन अत्यावश्यक है। स्वस्थ के स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोगी के रोगनिवारण हेतु सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक दोनों पक्षों का जितना विशद विवेचन इस संहिता में प्राप्त होता है उतना अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। यथा-

यस्य द्वादशसाहस्त्री हृदि तिष्ठति संहिता।
सोऽर्थज्ञः स विचारज्ञश्चिकित्साकुशलश्च सः॥
रोगांस्तेषां चिकित्सां च स किमर्थं न बुध्यते।
चिकित्सा वह्निवेशस्य सुस्थातुरहितं प्रति॥
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्कवित्। (च.सि.१२/५२-५३)

प्राचीन काल में गुरुशिष्यपरम्परा में सभी आचार्य अपने शिष्यों को संहिताओं का अध्ययन कराते समय वाक्यशः, वाक्यार्थशः एवं अर्थावयवशः शैली का उपयोग करते थे। सतत परिश्रमशील शिष्य भी गुरु की आज्ञानुसार संहिता-ग्रन्थों का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक दोनों दृष्टियों से साङ्गोपाङ्ग ज्ञान प्राप्त करते थे। परवर्ती काल में संहिताओं के गूढ एवं अस्फुट अर्थों को भलीभांति समझने हेतु उन पर व्याख्या लिखने का कार्य आरम्भ हुआ। चरकसंहिता पर सर्वप्रथम भट्टारहरिचन्द्र ने चरकन्यास नामक व्याख्या लिखी। इसके पश्चात् चरकसंहिता पर अनेक व्याख्याएँ लिखी गई। कालक्रम से उनमें से अधिकतर व्याख्याएँ पूर्णतः विलुप्त हो गई। इन लुप्त व्याख्याओं के अवशेष हमें उपलब्ध टीकाओं में आज भी मिलते हैं। सम्प्रति चरकसंहिता पर भट्टारहरिचन्द्र की चरकन्यास, जेज्जट की निरन्तरपदव्याख्या, शिवदाससेन की तत्त्वचन्द्रिका और योगीन्द्रनाथसेन की चरकोपस्कार व्याख्याओं का कुछ भाग एवं चक्रपाणिदत्त की आयुर्वेददीपिका तथा गङ्गाधर राय की जल्पकल्पतरु व्याख्याएँ पूर्णतः (पाण्डुलिपि या प्रकाशित प्रति या दोनों रूप में) उपलब्ध हैं। इनमें भी चक्रपाणिदत्त की आयुर्वेददीपिका व्याख्या का ही चरकसंहिता के पठन-पाठन में अधिक प्रचलन है। आयुर्वेददीपिका व्याख्या के बारे में विद्वज्जनों की मान्यता यह है कि इसके सहित चरकसंहिता का अध्ययन किये बिना आयुर्वेद के रहस्यों को समझना अत्यन्त दुरूह कार्य है।

२. सुश्रुत संहिता

बृहत्त्रयी के अन्तर्गत समाविष्ट सुश्रुतसंहिता आयुर्वेदीय साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि द्वारा उपदिष्ट एवं उनके शिष्य विश्वामित्रपुत्र सुश्रुत द्वारा प्रणीत ग्रन्थ आयुर्वेदजगत में सुश्रुतसंहिता के नाम से विख्यात हुआ। कालक्रमशः ५वीं शताब्दी में नागार्जुन द्वारा इस संहिता में उत्तरतन्त्र जोड़ने के साथ-साथ सम्पूर्ण संहिता का प्रतिसंस्कार भी किया गया। तदुपरान्त १०वीं सदी में तीसटपुत्र चन्द्रट ने जेज्जट की व्याख्या के आधार पर इसकी पाठशुद्धि की, उनका यह योगदान भी प्रतिसंस्कार जैसा ही था। आयुर्वेदवाङ्मय में इस ग्रन्थ को शल्यचिकित्सा के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है। यद्यपि वर्तमानकाल में उपलब्ध सुश्रुतसंहिता में अष्टाङ्ग आयुर्वेद का पर्याप्त वर्णन मिलता है तथापि शल्यचिकित्सा को आधार मानकर निर्मित होने के कारण इसे शल्यचिकित्सा के प्राचीनतम एवं आकर ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। आधुनिक शल्यचिकित्सक भी सुश्रुत को शल्यचिकित्सा का जनक मानते हैं।

सुश्रुतसंहिता मूलतः ५ स्थानों और १२० अध्यायों (सूत्रस्थान-४६, निदानस्थान-१६, शारीरस्थान-१०, चिकित्सास्थान-४० एवं कल्पस्थान-८ अध्यायों) में विभाजित है। नागार्जुनकृत उत्तरतन्त्र के ६६ अध्यायों को भी इसमें जोड़ देने पर वर्तमान में इस संहिता में कुल १८६ अध्याय मिलते हैं।

इस संहिता के सूत्रस्थान में आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त जैसे दोष-धातु-मल, ऋतुचर्या, हिताहित, अरिष्ट, रस-गुण-वीर्य-विपाक, आहार, औषध-द्रव्य, वमन-विरेचन आदि के साथ-साथ शल्यचिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्तों यथा अष्टविध शल्यकर्म, यन्त्र, शस्त्रानुशस्त्र, क्षारकर्म, अग्निकर्म, जलौकावचारण, कर्णव्यध, कर्णबन्ध, आम और पक्व व्रण, व्रणालेपन, व्रणबन्ध, षट् क्रियाकाल, शल्यापनयन आदि का भी अतुलनीय वर्णन मिलता है। तदुपरान्त निदानस्थान में शल्यशास्त्र के कतिपय प्रमुख रोगों का निदानपञ्चकात्मक वर्णन एवं शारीरस्थान में दार्शनिक विषयों, कौमारभृत्य के मौलिक सिद्धान्तों, मानव शरीरक्रिया और शरीररचना का वर्णन है। इसी स्थान में मर्मशारीर की अवस्थिति सुश्रुत के शारीर विषयक ज्ञान का उत्कृष्टतम स्वरूप है, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के लिए भी यह कुतुहल का विषय है। अधुना इस विषय पर पुनः अनुसन्धान अपेक्षित है। आयुर्वेदीय साहित्य में शरीररचना का जितना विशद विवेचन सुश्रुतसंहिता में मिलता है उतना किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं है। इसी कारण आयुर्वेद वाङ्मय में शारीरे सुश्रुतः श्रेष्ठः उक्ति प्रसिद्ध है।

चिकित्सास्थान में शल्यतन्त्रोक्त रोगों की चिकित्सा के साथ-साथ, वाजीकरण, रसायन एवं पञ्चकर्म आदि चिकित्सा विधाओं का वर्णन तथा कल्पस्थान में अगदतन्त्र का विस्तृत वर्णन है। उत्तरतन्त्र में शालाक्यतन्त्र, कौमारभृत्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, स्वस्थवृत्त, तन्त्रयुक्ति, रस और दोष विषयक मौलिक सिद्धान्तों का वर्णन है। संक्षेप में सुश्रुतसंहिता में न केवल शल्यतन्त्र अपितु आयुर्वेद के अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का विशद विश्लेषण किया गया है जिसके परिणामस्वरूप सुश्रुतसंहिता को बृहत्त्रयी में समादृत स्थान प्राप्त है।

सुश्रुतसंहिता शल्यपरम्परा का आधारभूत ग्रन्थ है, जिसमें शल्यचिकित्सा की विधाओं के निर्देश के साथ-साथ प्रत्यक्ष कर्माभ्यास को भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। किन्तु प्रत्यक्ष कर्माभ्यास शास्त्र के सम्यक् अध्ययनोपरान्त ही सम्भव है। संहिता के गूढार्थ को समझे बिना प्रत्यक्ष कर्माभ्यास में सम्यक् गति होना सम्भव नहीं है तथा बिना कर्माभ्यास के शल्यचिकित्सा में सिद्धि की कल्पना व्यर्थ है। अस्तु संहिता के गूढ एवं अस्फुटित विषयों के प्रकाशनार्थ परवर्ती आचार्यों द्वारा इस संहिता पर अनेक व्याख्याओं का प्रणयन किया गया। अधुना उनमें से कतिपय व्याख्याएँ ही उपलब्ध हो पाती हैं। वर्तमान में सुश्रुतसंहिता पर डल्हणविरचित निबन्धसङ्ग्रह, गयदासविरचित न्यायचन्द्रिका, चक्रपाणिदत्त विरचित भानुमती एवं हाराणचन्द्र विरचित सुश्रुतार्थसन्दीपन व्याख्याएँ उपलब्ध हैं। इनमें से न्यायचन्द्रिका केवल निदानस्थान पर और भानुमती केवल सूत्रस्थान पर उपलब्ध है जबकि निबन्धसङ्ग्रह और सुश्रुतार्थसन्दीपन व्याख्याएँ पूर्णतः प्रकाशित हैं। निबन्धसङ्ग्रह सुश्रुतसंहिता की उपलब्ध व्याख्याओं में से पठन-पाठन में सर्वाधिक प्रचलित एवं परमोपयोगी व्याख्या है। इस व्याख्या की महत्ता न केवल सम्पूर्ण उपलब्ध होने के कारण है अपितु विषयों का सरल एवं सुबोध भाषा में स्पष्टीकरण भी इसके महत्त्व ख्यापन का एक हेतु है। इस व्याख्या के बारे में विद्वज्जनों की मान्यता यह है कि संस्कृत का सामान्य ज्ञान रखने वाला स्नातक भी इसके सहित सुश्रुतसंहिता का अध्ययन करके आयुर्वेद के गूढ रहस्यों को आसानी से समझ लेता है। इस व्याख्या में द्रव्यों के अप्रचलित नामों पर टीका करते हुए प्रचलित पर्यायों का उल्लेख करके सन्दिग्ध द्रव्यों की समस्या का कुछ हद तक समाधान किया गया है।

३. अष्टाङ्गहृदय

भारतवर्ष की संस्कृति, परंपरा एवं ज्ञानविज्ञान की परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। चिकित्सा विज्ञान का एक अत्यंत प्राचीन और वैज्ञानिक रूप हमें आयुर्वेद के रूप में प्राप्त होता है। यह न केवल रोगों की

चिकित्सा करता है, अपितु जीवन को स्वस्थ, संतुलित और दीर्घायु बनाने की विधा भी सिखाता है। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथों में से एक है – अष्टाङ्गहृदयम्, जिसे आचार्य वाग्भट द्वारा रचित माना जाता है। यह ग्रंथ संक्षेप में आयुर्वेद के आठ अंगों का सार प्रदान करता है और इसलिए इसे "अष्टाङ्गहृदय" अर्थात "आयुर्वेद के अष्ट अंगों का हृदय" कहा गया है।

अष्टाङ्गहृदयम् की रचना आचार्य वाग्भट ने की थी। वे छठी-सातवीं शताब्दी ईस्वी के समय के प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आयुर्वेद ग्रंथों—विशेष रूप से चरक संहिता और सुश्रुत संहिता—का गहन अध्ययन करके उनका सार संकलित किया और उसे पद्यबद्ध, सुगम तथा व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत किया।

वाग्भट द्वारा दो ग्रंथों की रचना मानी जाती है—अष्टाङ्गसंग्रह और अष्टाङ्गहृदय। अष्टाङ्गसंग्रह गद्य-पद्य मिश्रित है, जबकि अष्टाङ्गहृदय संपूर्ण रूप से पद्यबद्ध (काव्यात्मक) है और अधिक लोकप्रिय भी है, विशेषकर विद्यार्थियों और चिकित्सकों के लिए।

अष्टाङ्गहृदयम् कुल ६ स्थानों (भागों) और १२० अध्यायों में विभक्त है। ये छह स्थान इस प्रकार हैं:

1. सूत्रस्थान – मूल सिद्धांतों की व्याख्या
2. शरीरस्थान – शरीर रचना और गर्भ विज्ञान
3. निदानस्थान – रोगों के कारण, लक्षण और निदान
4. चिकित्सास्थान – उपचार विधियाँ
5. कल्पस्थान – वमन, विरेचन आदि की औषधि-संभावनाएँ
6. उत्तरस्थान – विशेष चिकित्सा (बालरोग, नेत्ररोग, स्त्रीरोग आदि)

इस ग्रंथ की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है इसकी सरल पद्यात्मक रचना। अधिकांश श्लोक अनुष्टुप छंद में रचित हैं, जिससे इन्हें कंठस्थ करना और स्मरण रखना अधिक सहज हो जाता है।

'अष्टाङ्ग' शब्द का तात्पर्य है – आयुर्वेद की आठ शाखाएँ, जो निम्नलिखित हैं:

1. कायचिकित्सा – शरीर के सामान्य रोगों की चिकित्सा
2. कौमारभृत्य (बाल चिकित्सा) – शिशुओं व किशोरों की चिकित्सा
3. ग्रहचिकित्सा (भूतविद्या) – मानसिक रोग व अदृश्य कारणों से उत्पन्न विकार
4. शालाक्यतन्त्र – नेत्र, कर्ण, नासिका एवं मुख के रोग

5. शल्यतन्त्र – शस्त्रकर्म (सर्जरी) की चिकित्सा
6. अगदतन्त्र – विष चिकित्सा
7. रसायनतन्त्र – कायाकल्प एवं जीवनवृद्धि
8. वाजीकरणतन्त्र – प्रजननशक्ति और कामशक्ति वर्धन

अष्टाङ्गहृदय में इन सभी अंगों की संक्षिप्त और सुगठित जानकारी दी गई है, जिससे यह ग्रंथ सम्पूर्ण आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली को समाहित करता है।

इकाई - 2

अष्टाङ्ग परिचय

(आयुर्वेद के आठ अंग)

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्।

अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता॥ (अष्टाङ्गहृदय 1.5)

१. कायचिकित्सा

२. बालतन्त्र (कौमारभृत्य)

३. ग्रहचिकित्सा (भूतविद्या)

४. ऊर्ध्वांगचिकित्सा (शालाक्यतन्त्र)

५. शल्यचिकित्सा (शल्यतन्त्र)

६. दंष्ट्राविषचिकित्सा (अगदतन्त्र)

७. जराचिकित्सा (रसायनतन्त्र)

८. वृषचिकित्सा (वाजीकरण-तन्त्र)

अष्टाङ्गहृदय मे आयुर्वेद के आठ अंग कहे गये हैं। इन्हीं अंगों में सम्पूर्ण चिकित्सा आश्रित है।

(१) कायचिकित्सा - 'चिञ् चयने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय तथा 'च' के स्थान पर 'क' करने से इसकी निष्पत्ति होती है। 'चीयते अन्नादिभिः इति कायः' अथवा 'चीयते प्रशस्तदोषधातुमलैः इति कायः' दोनों ही व्युत्पत्तियाँ यहाँ अपेक्षित हैं। इसी में सम्पूर्ण शरीर को पीड़ित करने वाले आमाशय तथा पक्वाशय से उत्पन्न होने वाले ज्वर आदि समस्त रोगों की शान्ति का उपाय किया जाता है। अतः इसे कायचिकित्सा नामक प्रथम अंग कहते हैं। यह 'काय' यौवन आदि अवस्थाओं वाला है। इस अंग के प्रधान तन्त्र 'अग्निवेशतन्त्र' (चरकसंहिता), भेलसंहिता तथा हारीतसंहिता आदि हैं।

(२) बालतन्त्र या कौमारभृत्य - बालकों के शरीर में परिपूर्ण बल तथा धातुओं आदि का अभाव होने के कारण इस अंग का स्वतन्त्र वर्णन किया गया है। क्योंकि इनकी सभी प्रकार की औषधियाँ भिन्न प्रकार की होती हैं। दूध भी इन्हें माता या धात्री (धाय = उपमाता) का देने की प्राचीन काल से व्यवस्था है, जिसका वर्णन साहित्यिक ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। यहाँ एक शंका होती है कि बालकों की भाँति वृद्धों की चिकित्सा का भी स्वतन्त्र उपदेश आचार्यों ने क्यों नहीं किया ? इसका समाधान इस प्रकार है- वृद्धावस्था पूर्ण युवावस्था के बाद में आती है, अतः इसकी चिकित्सा का अधिकांश अंग कायचिकित्सा में ही समाविष्ट हो जाता है और जो कुछ अंश शेष रह जाता है, उसके निराकरण के लिए ७वें रसायनतन्त्र की व्यवस्था की गयी है। इस विषय का प्राचीन ग्रन्थ केवल 'काश्यपसंहिता' है, जो सम्प्रति खण्डित

उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त चरक-शारीर अध्याय ८ तथा चरक-चिकित्सास्थान अध्याय ३०, सुश्रुत- शारीरस्थान अध्याय १० एवं सुश्रुत-उ.तं.अ. २७ से ३७ तक देखें।

(३) ग्रहचिकित्सा (भूतविद्या) -इसमें देव, असुर, पूतना आदि ग्रहों से गृहीत (आविष्ट) प्राणियों के लिए शान्तिकर्म की व्यवस्था की जाती है। इनमें बालग्रह तथा स्कन्दग्रहों का भी समावेश है, साथ ही इनकी शान्ति के उपायों की भी चर्चा की गयी है। इस विषय का आज कोई प्राचीन स्वतन्त्र तन्त्र उपलब्ध नहीं है। केवल चरकसंहिता-निदानस्थान ७।१०-१६, चरक-चि. ९।१६-२१ और सुश्रुतसंहिता- उत्तरतन्त्र अध्याय २७ से ३७ तक तथा अध्याय ६० में भूतविद्या का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान अध्याय ५।१७-३३ तक शस्त्रकर्म करने के बाद रक्षोघ्न मन्त्रों द्वारा रोगी की रक्षा का विधान कहा गया है। खेद है कि युगों से गुरु-परम्परा से चली आने वाली यह विद्या आज शोचनीय दशा को पहुँच गयी है, आज भी इसकी सुरक्षा के उपाय नहीं किये जा रहे हैं।

(४) ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा (शालाक्यतन्त्र) - ऊर्ध्वजत्रुगत आँख, मुख, कान, नासिका आदि में आधारित रोगों की शलाका आदि द्वारा की जाने वाली चिकित्सा ही इस अंग का प्रधान क्षेत्र है। शालाक्यतन्त्र के नाम से आज कोई ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से नहीं मिलता। सुश्रुतसंहिता के उत्तरतन्त्र के अध्याय १ से १९ तक में उत्तमांग (शिरःप्रदेश) में स्थित नेत्ररोगों का, २० तथा २१वें अध्यायों में कर्णरोगों का, २२ से २४ तक नासारोगों का और २५ एवं २६वें अध्यायों में शिरोरोगों का वर्णन किया है। सुश्रुत-निदानस्थान में मुखरोगों का वर्णन तथा सुश्रुत-चिकित्सास्थान अध्याय २२ में मुखरोगों की चिकित्सा का उल्लेख किया है। चरक-चिकित्सास्थान अध्याय २६ में श्लोक १०४ से ११७ तक नासारोगनिदान, ११८ में शिरोरोगनिदान, ११९ से १२३ तक मुखरोगनिदान, १२७-१२८ में कर्णरोगनिदान तथा १२९ से १३१ तक नेत्ररोगनिदान का वर्णन मिलता है। वैसे भी शालाक्यतन्त्र पर अधिकारपूर्वक कुछ कहना यह चरक की प्रतिज्ञा के विरुद्ध विषय था। जैसा कि उन्होंने कहा है-'पराधिकारे तु न विस्तरोक्तिः शस्तेति तेनाडयत्र न नः प्रयासः'। अतएव वे इसके विस्तार में नहीं गये।

(५) शल्यतन्त्र - उक्त आयुर्वेद के आठ अंगों में यही अंग सबसे प्रधान है। क्योंकि प्रथम देवासुर- संग्राम में युद्ध में हुए घावों की सद्यःपूर्ति के लिए इसी की आवश्यकता पड़ी थी। उस समय देववैद्य अश्विनी-कुमारों ने इस तन्त्र का समुचित प्रयोग कर दिखाया था। आज भी शल्यचिकित्सा-कुशल चिकित्सक उनका प्रतिनिधित्व करते ही हैं। देखें-सु.सू. १।१७ तथा १८। भगवान् धन्वन्तरि का अवतार शल्य आदि

अंगों की पुनः प्रतिष्ठा के लिए ही हुआ था। देखें-सु.सू. १।२१। कायचिकित्सा-प्रधान चरकसंहिता में भी अर्श, उदर तथा गुल्म आदि रोगों में शल्यकर्मविशेषज्ञ से सहायता लेने का संकेत है। मूलतः शल्यतन्त्र में यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि के प्रयोगों का निर्देश मिलता है।

(६) दंष्ट्राविषचिकित्सा (अगदतन्त्र) - महर्षि वाग्भट द्वारा रचित दोनों संहिताओं (संग्रह तथा हृदय) में अष्टाग रूपी आयुर्वेद का विभाजक सूत्र अविकल रूप से प्राप्त होता है। इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि इन्होंने सुश्रुतसंहिता को आदर्श मानकर 'सर्पकीटलूता' आदि में प्रथम परिगणित 'सर्प' शब्द को प्रमुख मानकर 'दंष्ट्रा' शब्द का प्रयोग किया होगा, क्योंकि 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' यह सूत्र सर्वत्र अपनाया जाता है और सभी प्रकार के विषों में 'पीड़ाकरणसामान्य' गुण तो होता ही है। अगदतन्त्र उसे कहते हैं जिसमें सर्प आदि जंगम तथा वत्सनाभ आदि स्थावर विषों के लक्षणों का एवं विविध प्रकार के मिश्रित विषों (गरविषों) का वर्णन तथा उन-उनके शान्ति (शमन) के उपायों का वर्णन हो। सामान्य रूप से 'अगद' शब्द औषध का पर्याय है। इसकी व्याख्या इस प्रकार मिलती है-'न गदः अस्मात्' अथवा 'गदविरुद्धम्'। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ भी 'अगद' शब्द का अर्थ रोग को दूर करना ही रहा होगा। अस्तु। सुश्रुत का सम्पूर्ण कल्पस्थान अगदतन्त्र है, जैसा कि सुश्रुत-सूत्रस्थान (३।२८) में कहा गया है- 'अष्टौ कल्पाः समाख्याता विषभेषजकल्पनात्' ॥ इति। चूँकि इस कल्पस्थान में विषचिकित्सा की ही कल्पना की गयी है, अतः इसका नाम कल्पस्थान है। इस सन्दर्भ में चरक-चिकित्सास्थान का 'विषचिकित्सित' नामक २३वाँ अध्याय भी अवलोकनीय है।

(७) जराचिकित्सा (रसायनतन्त्र) - उक्त अगदतन्त्र के बाद रसायनतन्त्र के प्रस्तुतीकरण का औचित्य प्रतिपादित करते हुए श्री अरुणदत्त कहते हैं कि रसायनों के प्रयोग से विष का भी प्रभाव दूर हो जाता है। रसायन शब्द का विशेष परिचय देखें-च.चि. १।७-८। रसायनतन्त्र उसे कहा गया है जो वयःस्थापन (कुछ समय के लिए पुनः यौवन को स्थिर करने में सहायक) होता है, आयु को बढ़ाता है, मेधा (धारणाशक्तियुक्ता धीः) अर्थात् जो धारणाशक्ति तथा सभी प्रकार के बल को बढ़ाने एवं रोगों का विनाश करने में समर्थ हो। इस प्रकार का भी कोई प्राचीन स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। इसकी पूर्ति के लिए देखें-चरक-चिकित्सास्थान अध्याय १ के चारों पाद तथा सु.चि.अ. २७ से ३०।

(८) वृषचिकित्सा (वाजीकरणतन्त्र) - 'अवाजी वाजीव अत्यर्थं मैथुने शक्तः क्रियते येन तद् वाजीकरणम्'। वाजीकरणतन्त्र उसे कहते हैं जो अल्प मात्रा वाले शुक्र का सन्तर्पण करता है, दूषित शुक्र को शुद्ध करता

है, क्षीण शुक्र को बढ़ाता है और सूखे हुए शुक्र के उत्पादन के उपायों का निर्देश करता है। लिंग में प्रहर्षता को उत्पन्न कर नर-नारी में सन्तानोत्पादनशक्ति को पैदा करता है। 'वर्षति इति वृषः' इस अभिप्राय से भले ही इस तन्त्र को 'वृषचिकित्सा' कहा जाय, अन्यथा वृष (साँड़) जिन चेष्टाओं के बाद सोच-सोचकर मैथुन में प्रवृत्त होता है, उसे सुश्रुत ने सौगन्धिक नामक नपुंसक कहा है। देखें-सु.शा. २।३९, जैसे-साँड़ तथा कुत्ता।

इकाई - 3

प्राथमिक रोगोपचार

1. **मानसिक रोग**- शारीरिक एवं मानसिक रोग तीन प्रकार के होते हैं। यथा- दोषों से, कर्मों से और कर्म एवं दोषार्जित रोग। ये रोग निज एवं बाहरी प्रभाव दो तरह से उत्पन्न होते हैं। औषधि के प्रयोग दोषोत्पन्न रोगों का उपचार और कर्मों से उत्पन्न रोग धर्म,जप, तप तथा प्रायश्चित्त से ही लाभ होता है। इसी प्रकार शरीर के आश्रित और मन से उत्पन्न होनेवाले दो प्रकार के दोनों आश्रयों में होते हैं यथा-

निजमागन्तुकं वेति माद्यं द्विविधमुच्यते।

आश्रयो द्विविधस्यास्य शरीरं मानसं तथा।। (वैद्यक सारसंग्रह पृ. सं.72)

शरीर में उत्पन्न वाली व्याधि शारीरिक रोग तथा अन्न, आवास, रहन-सहन,काम, क्रोध, ईर्ष्या, उन्माद इत्यादि के विकारो से उत्पन्न रोग मानसिक रोग कहलाते हैं। मनोपचार मानसिक प्रभावों द्वारा रोगों से संघर्ष करने की विधा है। मन में 'तमस' एवं 'रजस' के असंतुलन के कारण ही क्रोध, मोह, ईर्ष्या, उन्माद, अपस्मार एवं मूर्छा इत्यादि उत्पत्ति की संभावना होती है। परन्तु मन के असन्तुलन वाले भावनात्मक विचारों का यदि निर्धारित समय में मनोपचार नहीं किया गया तो मानसिक व इन्द्रियों के असन्तुलन के कारण वात-पित-कफ जनित अनेक व्याधियाँ भी शरीर में उत्पन्न होने लगती है। क्योंकि मन का साक्षात् सम्बन्ध हृदय से है। वेदों से ऐहिक और पारलौकिक ज्ञान प्राप्त होता है।

यथा- मनः पुरः सराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति।

अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्त्वसंज्ञकं चेत इत्याहुरेके

तदर्थात्मसंपत्तदायत्तचेष्टं चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम्।।(आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य पृ.सं.74)

2. **वैदिक मन्त्रों के द्वारा मनोपचार**- उपचार के साथ-साथ वैदिक मन्त्रों से मनोपचार किया जाए तो बीमारी में शीघ्र लाभ मिलता है। वेदों के मंत्रों में ह्रस्व, दीर्घ की प्लुत युक्त उच्चारण ध्वनि में अनन्त वाइब्रेशन होते हैं। लोग उनके श्रवण से अवचेतन मन सक्रिय होकर चिंताओं से मुक्ति प्रदान कर दिमाग के रसायन को जाग्रत व केंद्रीकरण करते हैं, इनकी ऊर्जा से मानव भावात्मक, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक रूप प्रभावित होकर स्वयं के आत्मज्ञान के विवेचन स्वाथ्य लाभ प्राप्त करते हैं। क्योंकि मन के ज्ञान का केन्द्र बिन्दु और सप्त स्वरों का विधान और वेदमन्त्रों का विधान निश्चित अक्षरों की ताल और

लय पर ही आधारित हैं, इनके शुद्ध उच्चारण व श्रवण के प्रभाव से दिल की पल्स रेट की गति, रक्तचाप आदि आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ-साथ प्रयोग करने पर सामान्य हो जाते हैं।

3. **त्रिदोष परिचय-**

पित्त जनित रोग- पेट दर्द एवं गैस, दस्त, अधिक डकार आना, अपच, खट्टी डकार आना, ऐसीडिटी, पेशाब में जलन एवं रूक रूक कर पेशाब आना, पथरी, मधुमेह, स्वप्नदोष, ल्यूकोरिया, अल्सर, अण्डकोश वृद्धि, एलर्जी, दाद-खुजली, सिर दर्द, इंसुलिन की कमी, खून की कमी, पीलिया, बवासीर आदि।

वात जनित रोग- समस्त वात रोग, ज्वर, जोड़ो में दर्द, थकान, चक्कर, सवाईकल, लकवा, शरीर में सूजन आना, स्मरण शक्ति की कमी, मिर्गी आदि।

कफ जनित रोग- मदाग्नि, आलस्य आना, छीकें आना, जुकाम- खांसी, एलर्जी, सीने में दर्द, जी घबराना, सांस फूलना, हार्ट अटैक, गला दर्द, सूजन, टांन्सिल, थायराइड, ब्लड प्रेशर, मुँह से बदबू आना, लीवर सूजन, किडनी में दर्द, कैंसर के लक्षण, मोटापा बढ़ना, घाव, कान बहना, शरीर फूल जाना, अधिक निद्रा इत्यादि।

4. **रोग- उपचार- वातज्वर-**

भक्तिर्विभाव्यमाना विधुनोति श्रद्धयान्विता मोहम् ।

अनिलज्वरमिव शुण्ठी क्वथिता मधुधारयोपेता ।।(ज्ञा. भे.म.2)

अर्थ- श्रद्धापूर्वक पुनः पुनः भावना की गई ईश्वर की भक्ति ही को दूर करती है जैसे क्वाथ बनाई हुई सोंठ के साथ मधु मिलाने पर वातज्वर को सही हो जाता है। सोंठ का क्वाथ (काढ़ा) छान कर उसको शहद मिला कर पीना चाहिए।

पित्तज्वर-

सदसद्विवेक एकः प्रकृष्टभवतापवारणः प्रथितः।

पित्तज्वरापहारी, केवल इव पर्पटक्वाथः ।।(ज्ञा.भे.म.3)

सद् वस्तु और असद् वस्तु का विवेक ही संसारताप का मुख्य नाशक है जैसे केवल पित्तपापड़ा (खेतकैरुवा) का क्वाथ पित्तज्वर को दूर करने वाला होता है। वैद्यक सारसंग्रह में भी इसका उल्लेख मिलता है यथा-

पित्त ज्वरहरः प्रोक्तो एक एवहिपर्पटः।

विशेषादन्वितो बालशुण्ठी रोहितचन्दनैः।।70।।

पर्पटामलका छिन्ना कषायो विनियोजितः।

हन्ति पित्तज्वरं दाहः भ्रमशोष समागतः।।(वैद्यक सारसंग्रह 71)

पित्तपापड़ा आंवला, नीम गिलोय का क्वाथ तैयार कर सेवन करने पित्त ज्वर के साथ चक्कर आना, शरीर शोष आदि भी सही हो जाते हैं।

- पके आँवलों के रस कों खरल में डालकर घोटें जब वह गाड़ा होने लगे तो और रस मिलाएँ मिलाकर फिर घोटें ऐसे घोटते पर वह पुनः गाड़ा हो जाए तो उसकी गोली बनाकर चूर्ण बनाकर खाने से चित्त की घबराहट प्यास और पित्त ज्वर सही हो जाता है।(वनौषधि चन्द्रोदय)

कफज्वर-

शमयति शमः समेतः सन्तुष्ट्या सन्ततं भवक्लेशम्।

क्वाथः कलिद्रुमोत्थः कफज्वरं सोपकुल्य इव।। (ज्ञा. भे.म.4)

सन्तोषयुक्त शम निरन्तर संसार के क्लेशों को शान्त करता है जैसे पीपल के तण्डुलों का चूर्ण मिलाया बहेड़ा का क्वाथ कफ ज्वर को दूर कर देता है। अर्थात् बहेड़ा के क्वाथ को छान कर, उसमें पिपली एवं तण्डुल का चूर्ण डाल कर पीने से कफज्वर में आराम मिलता है।

तापत्रय सन्निपातज्वर, विषमज्वर- समस्त प्रकार के रोगों के लिए मुस्ता या फिर नागरमोथा एवं पितपापड़ा का क्वाथ श्रेष्ठ है। (आ.सि.र.)

ज्वर, वातरक्त एवं कफ दोषों के शमन के लिए गिलोय श्रेष्ठ औषधि है।(आ.सि.र.)

ध्यातव्य- ज्वर से पीडित होने पर सदैव हल्का गर्म पानी ही पीना चाहिए।

अजीर्ण रोग-

कथममौमनिषदशास्त्रं वितनोत्यात्मप्रबोधमनधीतम्।

कथमुदराग्न्यभ्युदयं करोत्यभुक्तं त्रिकटुचूर्णम्।।(ज्ञा. भे.म.11)

औपनिषदशास्त्र का अध्ययन न हो तो कैसे आत्मप्रबोध होगा, वैसे ही त्रिकटु (सोंठ, मिर्च और पीपल) का भक्षण नहीं करने पर कैसे उदराग्नि का उत्पन्न होगी। अर्थात् अजीर्ण रोग होने पर त्रिकटु का सेवन करना चाहिए।

- 10 मिली. नींबू के रस में 20 मिलीग्राम प्याज का रस एवं उसमें इच्छा अनुसार शहद मिलाकर पीने से लीवर, मदाग्नि एवं अजीर्ण लाभकारी है।
- नींबू तथा नींबू रस में अदरक का रस एवं काला नमक मिलाकर लेने से भूख बढ़ती और पाचन क्रिया में भी सुधार होता है।
- हरड़ एवं अदरक श्रेष्ठ औषधि हैं।(आ.सि.र. पृ.सं.116)
- आमले के कोमल पत्तों को पीसकर छाछ मिलाकर पीने से अजीर्ण और अतिसार में लाभ होता है।
- लौंग और हरड़ के क्वाथ में सैंधा नमक मिलाकर पीने से अजीर्ण में लाभ मिलता है।(वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.4.46)

क्रिमिरोग-

स्मृतिरेव राघवीया दुर्धरदुरितोच्चयक्षपणयोग्या।

क्रिमीजालपातनार्हा यवानिका पारसीकैव।।(ज्ञा. भे.म.12)

श्रीरामचन्द्र जी के स्मरण मात्र से घोर पापों का समूह नष्ट हो जाता है। वैसे ही पारस देश की अजवायन ही कृमियों के जाल को नष्ट करने को योग्य है।

- 2 से 3 ग्राम अजवायन का पाउडर को छाछ के साथ पीने से उदर के सभी कीड़ों से मुक्ति मिल जाती है।(आ.सि.र.)

रक्तपित-

कृपया सह रघुतिलकप्रसाद उच्चैर्भिनत्ति भवकृच्छ्र्

स च हन्ति रक्तपित्तं सितया सह वासकस्वरसः।।(ज्ञा. भे.म.13)

श्रीरामचन्द्र की कृपा से संसार के कष्ट समाप्त हो जाते हैं। वैसे ही मिस्री मिला हुआ अड़ूसे का स्वरस रक्तपित्त को दूर करता है। अर्थात् अड़ूसे को कूट कर उसका कपडे से छानकर स्वरस निकाले और उसमें मिस्री मिलाकर पीने से रक्तपित्त रोग दूर होता है। वैद्यक सारसंग्रह में ऐसा उल्लेख मिलता है यथा-

पिवेत्सितोपलायुक्तं पित्तज्वरपराशनम्।

सितोपलादाहयुतो वासकस्यरसः प्रगे।

रक्तपित्तज्वरं कासं क्षयं लयति पानतः। (वैद्यक सारसंग्रह 78)

क्षयरोग-

इह योगधारणाभिः पञ्चभिरुच्छेदमेति संसारः।

क्षय इह सितोपलात्वक्क्षीरीकृष्णात्वगेलाभिः।।(ज्ञा. भे.म.14)

यहाँ पाँच प्रकार की योगधारणाओं से संसार नष्ट होता है, उसी प्रकार यहाँ क्षयरोग मिस्री, वंशलोचन, पीपल, तज एवं छोटी इलायची के मिश्रण से दूर हो जाता है।

पिवेत्सितोपलायुक्तं पित्तज्वरपराशनम्।

सितोपलादाहयुतो वासकस्यरसः प्रगे।

रक्तपित्तज्वरं कासं क्षयं लयति पानतः। (वैद्यक सारसंग्रह 78)

अडूसे का रस या फिर अड़ूसे के पौधे का क्वाथ मिस्री के सहित सुबह सेवन करने से रक्तपित्त ज्वर, क्षय और खाँसी नष्ट हो जाती है।

नकसीर रोग-

रघुवर्य्यसौमनस्यात् संसृतिचक्रप्रवृत्तिरिह न स्यात्।

दाडिमकेसरनस्यान् नासारुधिरस्रुतिर्न स्यात्।।(ज्ञा. भे.म.15)

श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से जन्म-मरण के चक्र से मोक्ष मिल जाती है, उस प्रकार अनार या केसर की हुलास लेने से नाक से रुधिर निकलना बन्ध हो जाता है।

- आम की गुठली की गिरी को पीसकर सूँघने पर नकसीर में लाभ मिलता है।
- आंवले को पत्तों और कपूर को जल में पीसकर सिर पर लेप लगाने से नक्सीर तुरन्त बन्द हो जाती है। (वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.116))
- पीली मिट्टी में जल डालकर उसकी हुलास लेने से भी नाक से रुधिर बहना बन्द हो जाता है।
- कॉटन के कपड़े को जल से भिगोकर सिर पर रखने से नाक से रुधिर बहना बन्द हो जाता है। (**परम्परा से अनुभूत प्रयोग**)

कासरोग-

लघुभृष्टधीविचारो न तथा सधृतिश्छिनति संसारम्।

लघुभृष्टकष्टकारी स्वरस सकणो यथा कासम्।।(ज्ञा. भे.म.16)

धैर्ययुक्त सूक्ष्म परिपक्व बुद्धि का विचार उस तरह संसार को नष्ट नहीं करता, जैसे कि पीपल युक्त छोटी कण्टकारी का भुना हुआ स्वरस खांसी को सही कर देता है।

- श्वास एवं खांसी के लिए वासा, पिप्पली और कण्टकारी उत्तम दवा है।(आ.सि.र. पृ.सं.116)
- दो-चार काली मिर्चों को मुँह में डालकर चूसने से आराम मिलता है।
- चार-पाँच काली मिर्च और अदरक का काढ़ा बनाकर पीने से खांसी में आराम मिलता है।
- यदि खांसी के साथ कमजोरी भी महसूस हो तो 20 ग्राम काली मिर्च 100 ग्राम बादाम, 150 ग्राम देशी खांड या धागेवाली मिश्री का पाउडर एक ग्राम सुबह- शाम गर्म दूध या गर्मजल से लेने पर कमजोरी और खांसी दोनों में लाभ होता है।
- दालचीनी के चूर्ण को शहद के साथ लेने से श्वास और कास में लाभ मिलता है।
- लौंग को थोड़ा सा आग पर भूनकर ठंडा होने पर चूसने पर लाभ होता है।
- काली मिर्च के पाउडर को शहद और अदरक के रस को समान मात्रा में मिलाकर दिन में सुबह, दोपहर एवं शाम को चाटने से खांसी में लाभ होता है(वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.2.132))।
- लौंग को आग पर भूनकर मधु के साथ चाटने से खाँसी ठीक हो जाती है।(वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.4.46)

छिक्कारोग-

अद्वयत्त्वाकलनादहंममतिच्छेदि साधनं नान्यत्।

सैन्धवजलान्न चान्यच्छिक्काधिक्कारदं नस्यम्।।(ज्ञा. भे.म.17)

अद्वैतवेदान्त के विचार से अन्य कोई अहम्भाव दूर करनेवाला उपाय नहीं है। इसी तरह सेंधानमक के जल की हुलास से अन्य उपाय छींकरोग को दूर करनेवाला उपाय नहीं है।

श्वासरोग-

सामग्र्यजुः समुत्थे सारे विदिते कुतोऽर्थ सन्देहः।

माषनिशाऽसनजाते धूमे पीते कुतः स्वासः।।(ज्ञा. भे.म.18)

सामवेद, ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के सार तत्त्व को समझनेवाले को कहाँ असंदेह रहेगा, इसी प्रकार उरद, हल्दी और असन(अडूसा) से उत्पन्न धूँआ पीने से श्वास रोग सही हो जाता है।

स्वरभेद-

श्रीरामनाम्नि कण्ठस्थिते स पाप्मा सुदुर्दमः क इव।

क इव दृढस्वरभेदः पुष्करमूले मुखान्तः स्थे।।(ज्ञा. भे.म.19)

श्रीराम का नाम का उच्चारण करने दुर्लभ से दुर्लभ पाप दूर हो जाते हैं, इसी प्रकार कमल की जड़ को मुख में रखकर चूसने से गला भी खुल जाता है।

बदरीच्छदचूर्णेन सिन्धुत्थं घृतभर्जितम्।

विलीढं स्वरभेदं च सासमाशु विनाशयेत्।।(वैद्यक सारसंग्रह पृ.सं.246)

बेर के पत्तों के चूर्ण को घी में भूनकर सैंधा नमक के सहित चाटने से स्वरभेद नष्ट हो जाता है।

उच्चैर्जल्पनजेक्षीरं स्वरभ्रंशे पिबेत्तसम्।

मधुरैर्वा घृतं क्षौद्रं शर्कराभ्यां समन्वितम्।।(वैद्यक सारसंग्रह पृ.सं.247)

उच्ची स्वर से बोलने पर स्वरभंग हो तो गर्म दुग्ध के साथ घी, मधु और मिश्री मिलाकर सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

- एक या दो चम्मच हल्दी पाउडर को थोड़ा सा तबे पर भूनकर शहद के साथ मिलाकर चाटने पर गला बैठने या खांसी में
- शीघ्र आराम मिलता है।(आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य)
- कुलंजन को मुख में रखकर चूसने पर कैसा भी स्वरभेद हो सही हो जाता है।(स्व अनुभूत प्रयोग)
- गोबर के कण्डो जब जल जाए तब ईख को गर्म कर चूसने से गला खुल जाता है।(वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.प्र.156))

अरुचि रोग-

रामार्चनात्सहार्दान्मिथ्यादृष्टिर्विलीयते यादृक्।

अरुचिर्नश्यति तादृक् समक्षिकादार्द्रकस्वरसात्।।(ज्ञा. भे.म.20)

जिस प्रकार सौहार्द से श्रीराम के पूजन से मिथ्या दृष्टि विलीन हो जाती है उसी प्रकार मधु और अद्रक के स्वरस को लेने से अरुचि समाप्त हो जाती है। अर्थात् भोजन करने प्रवल इच्छा होने लगती है।

वमनरोग-

आत्मज्ञानदपरं किंमहङ्कृतिनिकृन्तनं बृहत्ककरणम्।

चाम्पेयाच्च किमन्यच्छर्दिगदोन्मर्दि भैषज्यम्।।(ज्ञा. भे.म.21)

आत्मज्ञान के छोड़कर अन्य अहंकार को दूर करनेवाला उपाय नहीं है, इसी प्रकार नागकेसर से अन्य वमन को सही करने का कोई उपाय नहीं है।

अरस्मार (मृगी)- अवधान पूर्वक गुरु के वाक्य भ्रम पर विजय प्राप्त कराते हैं। यह मिथ्या नहीं सत्य है, इसी तरह तेल सहित लहसुन ग्रहण करने पर अपस्मार दूर हो जाता है।

- नीम की पत्तियों का स्वरस सेवन करने वमन बन्द हो जाता है।(वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.3.12))
- शीशम के पत्तों का क्वाथ बनाकर पिलाने से वमन में लाभ होता है।

कामला रोग(पीलिया)-

ध्याते रघुपतिरूपे भवमृगतृष्णाक्षयस्तु किं वस्तु।

नागरपयसि च पीते किं चित्रं कामला नश्येत्।।(ज्ञा. भे.म.23)

श्रीरघुनाथ के रूप का ध्यान करने पर संसार की मृगतृष्णा का क्षय हो जाता है, वैसे ही सोंठ के सहित गोदुग्ध पीने से कामला रोग नष्ट हो जाता है।

- आंवले का लोह भस्म के साथ खाने से कामला और रक्त कमी के रोगों में शीघ्र लाभ होता है।(वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.116))
- भांगरे के रस में कालीमिर्च मिलाकर दही के साथ सेवन करने पर 7 दिन में कामला रोग ठीक हो जाता है।(वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.3.103)
- भुंई आंवला की सवा तोला जड़ में दूध मिलाकर तथा छानकर दिन में दो बार पिला ने से कामला सही हो जाता है।(वनौषधि चन्द्रोदयपृ.सं.3.119)

प्रमेह रोग(शुगर)

सारः श्रुतेः सबीजो निषेवणीयः प्रमाददोषध्वजः।

स्वररसोऽथवा गुडूच्याः समधुर्मेहामयध्वंसी।।(ज्ञा. भे.म.29)

बीजमन्त्र सहित वेद का सार तत्त्व प्रमाददोष को दूर करता है, वैसे ही गिलोह के स्वरस को मधु के सहित सेवन से शुगररोग ठीक हो जाता है।

शोथ(सूजन) रोग-

अनुचितमिदं शमाढ्यों हृत्सन्तोषो न शोकनाशकरः।

इदमप्यनर्हमार्द्रकरसो गुडाढ्यो न शोथहरः।।(ज्ञा. भे.म.30)

यह अनुचित है कि शमसहित चित्त का संतोष शोक को नहीं करे, वैसा ही यह असत्य है कि गुड के साथ अदरक का स्वरस शोध को दूर नहीं करे। अर्थात् गुड के साथ अदरक का स्वरस लेने से सूजन दूर हो जाती है।

- शोथ हेतु पुनर्नवा श्रेष्ठ औषधि है।
- मेथी, हल्दी एवं सोंठ को समान मात्रा पाउड़र बनाकर गर्म दूध या गर्म जल से एक – एक चम्मच सुबह-शाम लेने से सूजन व दर्द से आराम मिलता है।
- राई को पीसकर सूजनवाले स्थान पर लगाकर कॉटन की पट्टी बांधने पर लाभ होता है।
- पचास ग्राम लहसुन को कूटकर सौ ग्राम सरसों या जैतून के तेल पकाकर शोथ और दर्द में लाभ मिलता है।
- शरीर में मोच या सूजन आने पर गेहूँ के आटे की मोटी रोटी बनाएँ और उस गर्म रोटी पर सरसों का तेल और हल्दी पाउड़र को लगाकर शोथवाले स्थान पर लगाकर पट्टी बाँधने से शीघ्र लाभ होता है।(**आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य**)
- काली मिर्च को जल में पीसकर शोथवाले स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

व्रणरोग-

गुरुशास्त्रजोपदेशः समर्हणीयः सदा भवक्लिष्टैः।

व्रणिभिस्तु माननीयो गुग्गुलुनिम्बोद्भवो लेपः।।

गुरुमुख से आदरपूर्वक शास्त्रोपदेश सुनने से समस्त प्रकार के दुःख समाप्त हो जाते हैं इसी प्रकार गुग्गुल एवं नीम का लेप व्रण पर लगाने से लाभ होता है।

- नीम की सूखी हुई छाल को स्वच्छ पत्थर पर घिस कर उसका लेप व्रण पर लगाने से व्रण सही हो जाता है।
- कच्चे प्याज को गर्म करके फोडे पर बाँधने पर 3-4 दिन मे उससे पक कर मवाद निकल जाता और सही हो जाता है।(आ.सि.र. पृ.सं.123)

- अश्वगंधा के पत्तों पर घी लगाकर तबे पर गर्म कर दो –तीन दिन व्रण पर लगाने से व्रण पूर्णतः ठीक हो जाता है।(परम्परा से अनुभूत प्रयोग)
- वटवृक्ष के दुग्ध को व्रण पर लगाकर कॉटन की पट्टी बाँधने पर व्रण पूर्णतः वहीं बैठ जाता है।(परम्परा से अनुभूत प्रयोग)

नखरोग-

दुर्वृत्तो बुधबोधन - संस्कृतवृत्तो न कः सुवृत्तः स्यात्।

कुनखष्टङ्कण-चूर्ण-स्थगितनखः को न सुनखः स्यात् ।। (ज्ञा. भे.म.35)

कौन सा दुर्वृत्त पुरुष, संस्कृत जन के बोध कराने से सुवृत्त नहीं होगा, वैसे ही सुहागा के चूर्ण से नखों पर लगाने से कुनख सुनख हो जाएंगे।

खाज-खुजलीरोग-

अपि सम्भारवियुक्तं न राघवीर्याहंणं किभूतिघ्नम्।

गन्धकविरहितमपि किं सर्षपतैलं न कण्डूघ्वनम्।।(ज्ञा. भे.म.40)

सम्भार हीन भी श्रीरामचन्द्रजी का पूजन क्या मूर्त रोगों को दूर नहीं करता है। वैसे से गन्धक बिना सरसों का तेल खुजली का नाश नहीं करता। अर्थात् सरसों के तेल को खुजलीवाले स्थान पर लगाने से खुजली में आराम मिलता है।

नेत्र पुष्प-

विधृते हृदि रघुनाथे न दुःखनाशः क्षणेन तदसत्यम्।

निहितेऽक्षिण सिन्धुफेने न पुष्पनाशस्तदप्यनृतम्।।(ज्ञा. भे.म.40)

रघुनाथ जी को हृदय से स्मरण करने पर क्षणभर में दुःखनाश न हो यह असत्य है। इसी प्रकार आँख में फुली होने पर समुद्रफेन डालने पर सही न हो असत्य है। अर्थात् आँख में (नेत्रपुष्प) फुली होने पर समुद्रफेन का अंजन लगाने पर वह सही हो जाती है।

- अपामार्ग की जड़ को जल में पीसकर नेत्र इसका आंजन करने पर फूली एवं अन्य नेत्ररोगों में लाभ होता है। (वनौषधि चन्द्रोदय पृ.सं47)

कर्णदर्द-

सगुणसुजनकुलसङ्गो हृन्मगतृष्णानिशीथिनीग्रराट्।

तप्तसघृतरविपत्र-स्वरसः श्रुतिरुङ्मृगीमृगराट्।। ज्ञा. भे.म.48)

सद्गुणो से युक्त सज्जन कुल से मित्रता करने से चित्त की मृगतृष्णा ऐसे दूर हो जाती जैसे रात्रि को सूर्य दूर कर देता है। इसी प्रकार आक के पत्तों पर घी लगाकर गर्म करने के उपरान्त कान में गया स्वरस कर्णरोग को ऐसे सही कर देता है जैसे मृगिन को सिंह समाप्त कर देता है। इसका उल्लेख वनौषधि चन्द्रोदय में मिलता है लेकिन उसमें आक के पीले पत्तों का वर्णन है।

ध्यातव्य- आक के पत्ते को तोड़ते समय और गर्म करते समय सावधानी रखें क्योंकि आक का दुग्ध आँख में पड़ने पर आँख खराब हो सकती है और पत्ते को गर्म सदैव खुले स्थान में करना चाहिए।

- आम के पत्तों के रस को गुगगुना कर कान में डालने पर कर्णपीड़ा में आराम मिलता है।

1. **अपामार्ग** (Achyranthes aspera) **के वैदिक स्रोत**: अथर्ववेद में इसे "पृथ्वी पर विकसित सभी औषधियों का अधिष्ठाता" कहा गया है, एवं यह विषहरणी, दीर्घायुषी और वीर्य–ओजवर्धक के रूप में प्रतिष्ठित है ।

आयुर्वैदिक उपयोग

- **खाद्य एवं रोग-नाशक गुण**: वात–कफ को नियंत्रित करता है, अपच (अम), अजीर्ण, पेट की गैस, रक्तश्लेष्म, विद्रावों, पित्त, बवासीर और कृमि रोगों में उपयोगी है
- **मधुमेह और हृदय**: मधुमेह नियंत्रण, रक्तचाप में कमी, कोलेस्ट्रॉल घटाने, हृदय–स्वास्थ्य में सुधार में सहायक है।
- **रक्तापराजनक / कृमिनाशक**: पाउडर रूप में लेने पर वर्म, कृमि नष्ट करता है, कब्ज दूर करता है ।

विशेष औषधिक रूप

- **अपामार्ग भस्म**: इसकी (**भस्म**) राख पिलाने या स्थानीय तौर पर लगाने से मुख, गुदा (फिस्टुला), पाइल्स, वात–शूल, ब्रोंकाइटिस में बहुत लाभ मिलता है ।
- **हवन चूर्ण**: यजुर्वेद में इसका चूर्ण तैयार कर हवन में प्रयोग होता था—शरीर के दोषों को दूर करने में मदद करता है।

बाह्य अंगों पर प्रयोग

- **दंश और काटने पर उपचार**: छिपकली, बिच्छू आदि के दंश में जड़ या पत्तों का लेप लगाने से तत्काल राहत मिलती है ।
- **घाव-रोग और खुजली**: तेज़ प्रदाह–निवारक और स्किन इन्फेक्शन, खुजली और घाव जल्दी भरते हैं।
- अथर्ववेदानुसार यह अभिचार कर्मों का नाशक भस्मक (भूख अधिक लगना), प्यास अधिक लगना, इन्द्रिय दुर्बलता, बवासीर आदि रोगों का नाशक, विषनाशक, कृमिनाशक, रसायन के रूप में बल, वीर्य और ओज का वर्धक है ।

आधुनिक शोध

- **कीटाणुनाशक एवं एंटी-बैक्टीरियल**: जड़ी-बूटी में एंटीबैक्टीरियल, फंगिसाइडल एवं एंटीऑक्सिडेंट गुण हैं, जो घाव भरने और इन्फेक्शन रोकने में उपयोगी होते हैं ।
- **पाचन एवं वज़न घटाना**: वज़न नियंत्रण और गैस्ट्रिक अल्सर में उपयोगी—गैस्ट्रिक अम्लता को घटाता है तथा पाचन को बेहतर बनाता है ।

अपामार्ग त्वमस्यदप दु:ष्वप्न्यं सुव। (यजु.35/11) मैत्रायणी सं. 2.6.3.14.3.4

यजु. 35/11 अथर्व. 4 सू. 17-19

सेवन और सावधानियाँ

- **मात्रा-संयम महत्वपूर्ण**: उपयोग में लेने से पूर्व बीएएमएस या आयुर्वेदाचार्य की सलाह लेनी आवश्यक है।

2. अर्जुन)Terminalia arjuna) **में वैदिक ग्रंथों में** उल्लेख

- **यजुर्वेद, काठकसंहिता, अथर्ववेद**: -काठकसंहिता में अर्जुन(Terminalia arjuna) के दो प्रकार बताये गए हैं — **'लोहिततूल'** (लाल मंजरी) और **'बभ्रूतूल'** (भूरी मंजरी) **आर्जुनानि लोहित तूलानि भुतूलानि । (काठक. 34/3)**
- **छाल के औषधीय गुण**:

  भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार, इसकी छाल का क़्वाथ हृदयरोगों और पथरी (अश्मरी) में सेवन हेतु उपयोगी है।

छाल से तैयार पाउडर लेप कर अस्थि भंग एवं रक्तस्राव में लगाया जा सकता है। यह रक्त विकार, क्षत, क्षय, विष, प्रमेह, कफ व पित्त दोषों को नष्ट करता है। **यत्र वः प्रेङ्खा हरिता... (अथर्ववेद 437/5)**

आयुर्वेदिक उपयोग

- **हृदयरक्षक** (Hridya Rasayana):
    - ये हृदय के बल और कार्य को सुदृढ करता है।
    - इतिहासिक रूप से इसे एंजाइना, उच्च रक्तचाप, हृदय कमजोरियों, और कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण में उपयोग किया गया है

      घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिवन्ति चूर्ण ककुभत्वचो ये।

      हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥11॥
    - घृत, दूध अथवा गुड के शर्वत के साथ अर्जुन के चूर्ण को जो पीते हैं वे हृद्रोग, जीर्ण ज्वर और रक्तपित्त को मारकर चिरंजीवी हो जाते हैं।
- **पथरी/अश्मरी**:

  छाल के काढ़े का सेवन मूत्र में सोडियम-पोटेशिएम संतुलन सुधारता है और पथरी के कारकों को कम करने में सहायक होता है — संभवतः इसका असर मूत्रवर्धक (diuretic) गुण पर आधारित है।
- **अस्थि भंग और रक्तस्राव**:

  छाल को पीसकर लेप करने से हड्डियों के ठीक होने (संधान) में और रक्तस्राव को रोकने में लाभ होता है।
- **रक्त विकार, क्षय, विष, प्रमेह, कफ–पित्त**:

  यह सूजन, संक्रमण, रक्तस्राव और मेटाबॉलिक विकारों को नियंत्रित करता है।

सक्रिय अवयव और आधुनिक शोध

- **रक्तचाप**:

  छाल का अर्क वाहिकाओं की मांसपेशियों को शिथिल कर रक्तचाप को कम करता है

- **हृदय स्वास्थ्य:**

  इसकी एंटीऑक्सिडेंट क्रियाएँ हृदय ऊतक को क्षति से बचाती हैं।

तैयारी और उपयोग विधि

- **क़्वाथ (द्रव अर्क):**

  छाल को पानी में उबालकर जब एक-चौथाई बच जाए, तब उसे छानकर प्रयोग में लाया जाता है — यह हृदय, पथरी, और रक्त विकारों में उपयोगी माना गया है

- **लेप (घोल/पेस्ट):**

  टूटी हड्डी पर छाल का पेस्ट या घी-मिश्रित लेप चोट और रक्तस्राव दोनों में सहायक है ।

3. उदुम्बर/ गूलर (Ficus racemosa) 1. उदुम्बर के वैदिक संदर्भ-

- **यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में उल्लेख:**

  – यजुर्वेद व अथर्ववेद में इसका नाम 'उदुम्बर' या 'औदुम्बर' मिलता है, जिसमें इसे ऊर्जा और समृद्धि का प्रतिनिधि माना गया है

- अथर्ववेद में "औदुम्बरमणि" का वर्णन मिलता है, जिसमें यह विष हरने, समृद्धि, वाणी बलवर्धन आदि में सहायक बताया गया है ।

  – श्वेताथ सप्तमो हवन-द्रव्य के रूप में उदुम्बर की समिधा उपयोगी मानी गई है

आयुर्वेदिक गुण एवं उपयोग

- **पोषण-दायक (पुष्टिकारक):** शारीरिक वृद्धि और बलवर्धन हेतु उपयोगी
- **धन-धान्य और दुग्धवर्धक:** सम्पत्ति-वृद्धि और पशुओं में दूध उत्पादन बढ़ाने में सहायक ।
- **औषधीय गुण** (भावप्रकाश): व्रणशोधक, पित्त-कफ-रक्त विकार-शामक और

  रक्त-प्रदर/रक्तवमन में उपयोगी ।

- **बौधायनश्रौतसूत्र में:** उन्माद (पागलपन) विकार में उदुम्बर का होम विधि में उल्लेख मिलता है

औदम्वरीम् आ दधाति उर्ग वा उदुम्वरः तैत्तरीय 5.1.10.1 **महान् भद्र उदुम्वरः अथर्ववेद** (20/136/15) **अथर्व** (19/31.1 -14)

4. **अश्वत्थ** (Ficus religiosa / **पीपल वृक्ष) का** वैदिक उल्लेख

- **ऋग्-, यजु- एवं अथर्ववेद** में इसका उल्लेख मिलता है— ऋग्वेद I.164.20 में "वृक्षराज" के रूप में वर्णित, तथा अथर्ववेद में शत्रुनाशक के रूप में उपयोग का उल्लेख किया गया है **ब्राह्मण और हवन ग्रंथ**: ऐतरेय ब्राह्मण में इसे वनस्पतियों के सम्राट के रूप में वर्णित किया गया है और उन्माद रोग में इसकी लकडी से हवन का विधान है । (ऐतरेय ब्रा. 7/33, 8.16)
- **यज्ञीय वृक्ष**: इसे शमी, पलास, खदिर, विकंकट, काश्मर्य, उदुम्बर, बिल्व आदि के साथ यज्ञ है। (अथर्ववेद 3.6.1- 8) (अथर्ववेद परिशिष्ट 23.06.05)

वनौषधि उपयोग और गुण

- **भावप्रकाश निघण्टु** के अनुसार अश्वत्थ के बीज, फल, पत्ते औषधि रूप में प्रयोग किए जाते हैं। यह रूपशोधक, योनिशोधक, पित्त–कफ–रक्त विकारों को नष्ट करने वाला माना गया है। (भावप्रकाश पृष्ठ 337-338)
- **हृदय, ज्वर, त्वचा रोग** सहित अन्य रोगों में इसका पत्तों का रस, छाल का अर्क एवं फल उपयोगी है
- **रक्तस्राव व व्याधियां**—पत्तों के रस से रक्तप्रदर और रक्तवमन को रोका जाता है, यह अङ्गशुद्धि में सहायक है ।

आधुनिक शोध प्रमाण

- **वेदनांतिक गुण**:
    - *इससे यह स्पष्ट है कि मधुमेह-रोधी, एंटीडायबिटिक, एंटीऑक्सिडेंट, हेमोस्टैटिक तथा एंटीबैक्टीरियल गुण रखता है।*

अश्वत्थम् ऋ. 1.135.8 । अश्वत्थे वो निषदनम् यजु. 12.79 । अश्वत्थो देवसदनः अथर्ववेद 5/4/3

5. **गिलोय-**

गिलोय के एक तोले ताजे पत्ते लेकर उनको कुचलकर 6 तोले जल में डाल दें प्रातः उसमें मिश्री मिलाकर पीने से पित्तज्वर नष्ट होता है।

अडूसे का हिम- अडूसे के एक तोले ताजे पत्ते लेकर उनको कुचलकर 6 तोले जल में डाल दें प्रातः उसमें मिश्री मिलाकर पीने से खांसी तथा रक्तपित्त से युक्तपित्तज्वरन होता है।

अमृताया हिमः प्रातः ससितः पैत्तिकं ज्वरम् ।

वासायाश्च तथा कासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥317॥ (भावप्रकाश)

6. बिल्व (Aegle marmelos) का वैदिक संदर्भ

- **यजुर्वेद एवं अथर्ववेद** में इसका उल्लेख मिलता है और इसे *पवित्र वृक्ष* माना गया है एवं शिव जी को अति प्रिय है। (ज्योतिषो बिल्वोऽजायत मैत्रा 3/9/3 महान्वै भद्रो विल्व:। अथर्व. 20/136/15) पक्वं सुदुर्जरं बिल्वं दोषलं पूतिमारुतम्॥ दीपनं कफवातघ्नं बालं, ग्राह्युभयं च तत्।। (अष्टाङ्गहृदय)

आयुर्वैदिक उपयोग

- **पकाकर रस (पकास्वरूप):**
  - **रस उपचार:** पके बेल का रस पेट की सभी समस्याओं का नाशक माना गया है— विशेषकर कब्ज, अतिसार (दस्त), और पेट विकारों में यह उपयोगी है । (भावप्रकाश गुडूच्यादि 12-13 । पृष्ठ 146-147)
- **क्वाथ (उबालकर बनाए जाने वाला अर्क):**
  - कच्चे बेल के क्वाथ का अग्निप्रदीप्त कर अतिसार, दस्त(अधिक पतले) आदि में उपयोग श्रेष्ठ है।
- **रेचक (लैक्सेटिव) गुण:**
  - कच्चा बेलपत्र फल कब्ज निवारक और आतों को नरम करने में असरदार है ।

आधुनिक शोध

- **पाचन संबंधी लाभ:**
- बेल वृक्ष की तीनों पत्तियों को प्रतिदिन कुछ काल पर्यन्त खालीपेट खाने से सभी प्रकार के ब्लड प्रेशर/ रक्तचाप सही हो जाते हैं।
  - दस्त, उदर दर्द, गैस, और में पौष्टिक रूप से उपयोगी है
- **डायबिटीज एवं कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण:**

- इसका प्रयोग मधुमेह के स्तर को नियंत्रण में रखने में सहायक पाया गया है ।

- **एंटीबैक्टीरियल, एंटिफंगल, एंटी-इंफ्लेमेटरी:**
    - छाल-पत्तों में सूजनरोधी, गाठ और रोग-प्रतिरोधक गुण हैं ।

7. न्यग्रोध (Ficus benghalensis) वट/बरगद वृक्ष का वैदिक उल्लेख

- **यजुर्वेद एवं अथर्ववेद** में न्यग्रोध (वट/वड़ वृक्ष) का उल्लेख मिलता है—यह अपने नीचे झुकती शाखाओं से नए वृक्ष उत्पन्न करने की विशेषता के कारण 'न्यग्रोध' नाम से जाना गया । **(अवरोधैर्न्य ग्रोधं मैत्रा. 4.4.2 न्यग्रोधा महावृक्षा: अथर्ववेद 4/37/4)**

आयुर्वेदिक उपयोग

- **दाह (जलन), व्रण:**

  – छाल और पत्तों से बने लेप/रसायन लगाकर त्वचा व्रणों तथा जलन (दाह) में राहत प्राप्त होती है ।
- **रक्तातिसार (खूनी दस्त), सूजाक:**

  – छाल का क्वाथ दस्त (विशेषकर रक्तातिसार) में उत्तम और सूजन (दर्द, सूजन) में सहायक सिद्ध हुआ।
- **हाथ-पैर फटने:**

  – इसके दूध (लेटेक्स) का प्रलेप फटे त्वचा भागों—जैसे हाथ-पैर में लगाने से लाभ होता है।
- **दाँत दर्द:**

  – छाल या मूल से तैयार अर्क/पेस्ट को उपयोग से दंतशूल में तुरंत राहत मिलती है और मुँह की सफाई भी होती है ।

आधुनिक शोध

- **एंटी-इन्फ्लेमेटरी व रोधी गुण:**

  – छाल, पत्ते, मूल व दूध में सूजन–रोधी, रक्त स्टॉपिंग (कोआग्युलेशन) और दर्द निवारक तत्व पाए गए हैं ।

- **मधुमेह, दस्त, त्वचा रोग:**

  – छाल का काढ़ा मधुमेह नियंत्रण, दस्त/डायरिया और चमड़ी के प्रभावी रोगों (इंफेक्शन) में उपयोगी है।
- **दंत चिकित्सक:**

  – जड़ व टहनी का अर्क दाँतों के दर्द को रोकने में प्रभावी पाया गया है।

8.बभ्रु (Bhabhru) – अथर्ववेद में उल्लिखित शङ्खपुष्पी (शहस्त्रपर्णी) शङ्खपुष्पी की तीन श्रेणियाँ होती हैं: श्वेतपुष्पी, रक्तपुष्पी, नीलपुष्पी — इनमें से श्वेतपुष्पी को विशेष रूप से 'बभ्रु' भी कहा गया है। (बभ्रु कल्याणि सं नुद अथर्ववेद 6/139/3)

प्रभाव	आयुर्वैदिक गुण/लाभ
शास्त्रीय उल्लेख	श्वेतशङ्खपुष्पी (Bhabhru), दस्तावर, मेधावर्धक, वीर्य वर्धक, गुणकारी
मन–स्वास्थ्य	तनाव–शमन, मेमोरी सुधार, नर्वस टॉनिक
स्नायु व मानसिक विकार	स्मृति, बुद्धि, स्नायुतंत्र में संतुलन व प्रभाव **(भावप्रकाश मुडूच्यादि 272-273 पृष्ठ 261-262)**

खल्व- वैदिक ग्रंथों में इन अन्नों का उपयोग न केवल भोजन में बल्कि औषधीय रूप में भी किया जाता था—जिनमें चना (खल्व) विशेष रूप से पित्त और कफ को शांत करने हेतु माना गया था । खल्वाश्च में यजु. 18-12। हतो येवाष: क्रिमोणां हतो नदनिमोत । सर्वान् नि मष्मषाकरं दृशदा खल्वाँ इव ।) (अथर्व 5/23/08)

रूपांतरण	दोष निवारक	उपयोग
उबाला/भिगोया चना	पित्त, कफ	भोजन रूप में सेवन से दोष संतुलन।

9. पुनर्नवा (Punarnava – Boerhavia diffusa) का शास्त्रीय विवरण

- 'पुनर्नवा' अथर्ववेद में वर्णित है क्योंकि यह बारिश के बाद पुनः हरा हो जाता है—पुनर + नया; इसमें दो प्रकार आते हैं: **श्वेत** और **लाल** । या रोहन्ति पुनर्नवा: अथर्व. 8/7/8(
- इसे *शोधहर* (शुद्धि व उच्छेदनकारी) कहा गया; शरीर में सूजन, विष और कफ को नष्ट करता है

उपचार क्षेत्र	उपयोग विधि	लाभ और प्रभाव
शरीर-सूजन, हाथ-पैर सूजन	पत्तों की सब्जी/रस	सूजन, दर्द में राहत
पाचन एवं अग्निदीपक	आहार में सेवन	आँत की सूजन, गैस को कम करता है
पीलिया	रसक्वाथ/	यकृत-संवर्धन में लाभकारी
मूत्रकृच्छ्र (UTI)	पत्तों की सब्जी/रस	मूत्र मार्ग की समस्याएँ दूर करता है
विषधर, कीट, वृश्चिक दंश	पत्तों के रस का लेप	विषहरण और जलन निवारक (भावप्रकाश गुडूच्यादि 235-237 पृष्ठ 244-245)
सर्वज्वरनाशक	क्वाथ	ज्वर समस्याएँ दूर करता है
		बीएएमएस या आयुर्वेदाचार्य की सलाह के अनुसार

वृश्चीरो बिल्ववर्षाभूः पयः सोदकमेव च।

पचेत्क्षीरावशेषं तत्पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ (भा. प्र. 111.पृ.36)

सफेद पुनर्नवा, बेल की छाल, लाल पुनर्नवा, दूध और जल को यथाविधि पकाकर एवं जब दूधमात्र अवशिष्ट रह जाए तब उतारें तथा छान कर क्वाथ को पिला देने से सर्वज्वरनाशक होता है।

वृश्चीरः- श्वेतपुनर्नवा । वर्षाभूः रक्तपुनर्नवा। तथा च मदनपालः-*पुनर्नवा श्वेतमूलो वृश्चीरो दीर्घपत्रकः। पुनर्नवाऽपरा रक्ता वर्षाभूः रक्तपुष्पकः ॥63॥

"मदनपाल" निघण्टु में वर्णन है कि जिस पुनर्नवा का मूल भाग श्वेत वर्ण का हो तथा पत्तें बडे- बडे हों तो उसे "वृश्चीर" अर्थात् सफेद पुनर्नवा होता है और जिसका मूलभाग एवं पुष्प रक्तवर्ण के हों उसे "वर्षाभू" अर्थात् लाल पुनर्नवा का बोध होना चाहिए।

10.इक्षु (गन्ना – Saccharum officinarum)के वैदिक स्रोत-

- **यजुर्वेद एवं अथर्ववेद** में इक्षु का उल्लेख होता है, और **श्रौत सूत्रों** में इसकी शाखा (*इक्षुकाण्ड*), पर्ण (*इक्षुपर्ण*), तथा पुष्प (*इक्षुशलाका*) वर्णित हैं। इक्षव: यजुर्वेद 25/1 इक्षुजा अथर्ववेद 1/34/05
- इसका पकाकर सेवन *रक्तपित्त* (खून से जुडी पित्तरोग), *क्षय, वीर्य, बल, कफ* तथा *मूत्रवर्धक* गुणों से सम्बंधित है—यह ज्वर, वात-पित्त और कफ दोषों को शांत करता है।

लाभ क्षेत्र	आयुर्वेदिक तथ्य	आधुनिक शोध	
पित्त-शमन	ठंडा, मधुर, वात-पित्त विकार घटाता है	फेनोलिक यौगिक से एंटी-इंफ्लेमेंट्री गुण	
ऊर्जा व वीर्य-वर्धन	बलदायक, वीर्यवर्धक और पुष्टिकारक	लोह, पोटैशियम से ऊर्जा और इम्यूनिटी	
पाचन-निद्रावरोध	मूत्रवर्धक, रेचक में सहायक	इलेक्ट्रोलाइट संतुलन, हल्के लैक्जेटिव गुण	
स्किन और अन्य उपयोग	गले की खराश रोकने में	त्वचा की चमक और हाइड्रेशन	
शुगर (मधुमेह)व खांसी	रोकने में सहायक	फास्फोरस वृद्धि के गुण	

11. अतिविद्धभेषजी (पिप्पली – *Piper longum*) वैदिक संदर्भ-

- 'अतिविद्धभेषजी' अथर्ववेद (सुक्त 6.109.1) में वर्णित है, जहाँ इसे **पीपली या क्षण्तभिषेजी** कहा गया है पिप्पली अतिविद्ध भेषजी (अथर्ववेद 6/109/1-3)
- शायण इसे धनुर्वात-अक्षेपक तथा **समस्त वातव्याधियों** के लिए संतुलक औषधि मानते हैं। कौशिकसूत्र में इसे मेधावर्धक अन्य औषधियों के साथ जोड़कर खाने का विधान उल्लेखित है।
- 'सितोपलादि चूर्ण' जैसी नुस्खों में इसकी प्रमुखता है, और भावप्रकाश निघण्टु में इसे **श्वास, खाँसी, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहाशूल व आमवात** नष्ट करने वाला बताया गया है **कण्ठावरोधं हृदयावरोधं स्वेदजं....।। पिप्पल्यादिक पायन्तु कफजे परिपाचनम्।।** (भावप्रकाश)

- **गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णनालोडितं लिंहेत्।**

चिरादपि च संनष्टां निद्रामाप्नोति मानवः॥326॥

- **क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः।**
- **प्लीहानं हन्ति हिक्काश्च बालानामपि शस्यते ॥377॥ (भावप्रकाश)**

- पिप्पल्यवलेह-पीपल का चूर्ण शहद के साथ मिलाकर चाटने से वास, कास, ज्वर, प्लीहा एवं हिचकी ये सत्र रोग नष्ट होते हैं। यह अवलेह बालकों के लिए भी उत्तम होता है।

पिप्पलीं त्रिफलां चापि समभागां ज्वरी लिहन् ।

मधुना सर्पिपा चापि कासी श्वासी सुखी भवेत् ॥378 ॥

अर्थात् पीपल और त्रिफला (आंवला, हरड, बहेड़ा) इनका का चूर्ण समान भाग में मिलाकर मधु तथा गोघृत के साथ फेंटकर चाटने से कफज्वररोगी, खांसी एवं दमेवाला रोगी ये सब सुखी हो जाते हैं।

पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी।

श्वासकासज्वरहरी पाण्डुप्लीहोदरापहा ॥ 820 ॥

लाभ क्षेत्र	आयुर्वेदिक तथ्य	आधुनिक शोध
श्वास–खाँसी	श्वासशोधक, कफशामक.	बलगम हटाने, फेफड़े की रक्षा

मेधा/बुद्धि	मेधावर्धक सूक्त, मेधा-वर्धन क्रिया	न्यूरोप्रिमेंह्व, याददाश्त में वृद्धि
वात–रोग- हृदयावरोध	वात–शमन कार्य	आर्थ्राइटिस, वातनाशक प्रभाव
शक्ति/वीर्य-निद्राकारक	वीर्य–बल वृद्धि, जीवक शक्ति बढ़ाना	ऊर्जा व स्टैमिना वृद्धि
अन्य	ज्वर, कुष्ठ, गुल्म, व्रण-उदर-प्लीहा (पिप्पल्यः प्लीहशान्तये)	टी-इन्फ्लेमेटरी, इम्यूनो सपोर्टिव

12. गुग्गुल / गुलगुल (Guggul – Commiphora mukul) वैदिक उल्लेख- तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में इसका विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। गुल्गुलु यदेता.... (तैत्ति. 6/2/8/44)

अथर्ववेद में कहा गया है: "जिस क्षेत्र तक इसकी सुगंध फैले, वहाँ यक्ष्मा (क्षय रोग) आदि रोग उत्पन्न नहीं होते"। यं भेषजस्य गुल्गुलो सुरभिर्गन्धो अश्नुते। **(अथर्व. 19/38/1-3)**

लाभ क्षेत्र	आयुर्वैदिक तथ्य	आधुनिक शोध
यज्ञ/हवन	शुद्ध धूप-स्मोक से रोगों से सुरक्षा	वातावरण शुद्धिकरण व वर्षा कारक तथा एंटीऑक्सिडेंट
स्वास्थ्य लाभ	सूजन, गठिया, हृदय, यक्ष्मा (क्षय रोग), त्वचा रोग आदि	कृमिनाशक

वैदिक संदर्भ

- **अथर्ववेद** में केशदृहणी/केशवर्धनी को बालों को पुष्ट और मजबूत करने वाली औषधि के रूप में उद्धृत किया गया है।
- **पैप्पलाद संहिता** में इसके प्रयोग को विस्तारित रूप से बताया गया है- यह केवल बालों को बढ़ाने में नहीं, बल्कि बाल सफ़ेद होने (पलित), शीर्ष रोग (सिर समस्याएँ), खालित्य (गंजापन) में भी उपयोगी बताया गया है।

पारंपरिक गुण व उपयोग

- **बल और जड़ की मजबूती**: केस वर्धन के अतिरिक्त यह बालों की नमी एवं पोषण को भी बनाए रखने में सहायक होता है।
- **गंजापन और सिर संबंधी रोग**: सिर की समस्याओं, सफेद बालों, दोमुँहे बालों की स्थिति एवं सिर की खुजली जैसी शिकायतों में उपयोगितापूर्ण माना गया है।
- **उदर रोग**: पाचन सम्बन्धी समस्याओं में भी उपचारात्मक प्रभाव बताया गया है।

एता स्थः केशवर्धनीरथो स्थ केशवृंहणीः ।।3।।

वृंह मूलमाग्रं यच्छ विमध्यं यमयौषधे ।

केशवर्धनमस्याथर्वणं केशवृंहणमस्याथर्वणम् ।।3।।(पैप्पलाद संहिता1.38 वां सूक्त)

13. **आंवला** (Phyllanthus emblica):- **शीतमम्लं पित्तकफाहम्। (अष्टाङ्गहृदय)**

पोषक तत्व	**प्रमुख लाभ**
विटामिन C और कैल्सियम	प्रतिरक्षा प्रणाली में शक्त, त्वचा एवं हड्डियों के लिए लाभदायक
पाचन और विषहरण	कब्ज व एसिडिटी दूर करने में कारगर
त्वचा और बाल	कोलेजन उत्पादन बढ़ाकर त्वचा को निखारता है; खालित्य (गंजापन), पलित्य (सफेद बाल) और दारुणक (डैंड्रफ) से रक्षा एवं बालों को घना, मजबूत और चमकदार बनाता है।
वजन नियंत्रण	कम कैलोरी, अधिक फाइबर, मेटाबॉलिज्म बढ़ाता है व मोटापा घटाता है

दृष्टि स्वास्थ्य	विटामिन A और कैरोटीन से दृष्टि सुरक्षित; ग्लुकोमा, मोतियाबिंद से रक्षा
न्यूरो सुरक्षा	मस्तिष्क को ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाता, स्मृति एवं ध्यान में सुधार
लीवर समर्थन	हेपेटोप्रोटेक्टिव गुण – जिगर को विषैले तत्वों से बचाता है
त्रिदोष संतुलन	वात-पित-कफ दोष सम

14. **बहेड़ा-विभीतक** (Terminalia belerica Roxb)- **इसके फलों में टैनिन पाया जाता है।**

पोषक तत्व	**प्रमुख लाभ**
कब्ज	आंत्र गति को बढ़ाना और मल को नरम करना(त्रिफला मिश्रण)
दस्त (Diarrhea)	आन्त्र की गति को संतुलित करना; बैक्टीरियल तनाव घटाना
खाँसी एवं श्वसन समस्या	श्वास नलिका की रक्षा
वजन नियंत्रण	भूख नियंत्रित
त्रिदोष संतुलन	वात-पित-कफ दोष सम

15. **हरड़** (Terminalia chebula)

पोषक तत्व	**प्रमुख लाभ**
कब्ज (Constipation)	उच्च फाइबर से आंत्र गति उन्नत
पाचन और विषहरण	कब्ज व एसिडिटी, दूर होती है
दस्त (Diarrhea) **व पेचिश**	अपच व दस्त में मददगार
अपच, गैस, अम्लता	जठराग्नि में वृद्धि
त्रिदोष संतुलन	वात-पित-कफ सम

16. त्रिफला-

इयं रसायनवरा त्रिफलाऽक्ष्यामयापहा।

रोपणी त्वग्गदक्लेदमेदोमेहकफास्त्रजित् ।।149॥

यह उत्तम कोटि का रसायन है। यह नेत्ररोगों का विनाश करता है, व्रणरोपण, त्वचा में होने वाली सड़न, मेदोदोष, प्रमेह, कफज रोग एवं रक्तज रोगों का नाश करता है।

हरीतकी (हरड), बिभीतकी (बहेड़ा) और आंवला इन 3 वनौषधियों के मिश्रण को त्रिफला कहते हैं, इसमें डिटॉक्सिफिकेशन प्रयाप्त मात्रा में होता है। आयुर्वेदाचार्य श्री बालकृष्ण जी एवं राजीव दीक्षित जी के अनुसार निर्माण- जैसे- हरीतकी (हरड)100, बिभीतकी (बहेड़ा) 200 और आंवला का 300 ग्राम का मिश्रण बनाकर उपयोग में लेना चाहिए है। अर्थात् एक हरड, दो बहेड़ा और तीन आँवला, इनका इस अनुपात में मिश्रण करना चाहिए। **ध्यातव्य**- (वजन कम करने के लिए सुबह तथा पेट साफ करने के लिए शाम को खाना चाहिए।)

इन वनौषधियों को रोगानुसार उचित मात्रा में नियमित सेवन से अच्छे परिणाम आते हैं परन्तु बीएएमएस या आयुर्वेदाचार्य के मार्गदर्शन में स्वयं बनाया हुआ अधिक कारगर है।

इकाई - 4

वैद्यकीय सुभाषित संग्रह

रोगारोगविज्ञानम्

शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शारीरजा गुणाः।

तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वास्थ्यलक्षणम् ॥ (महाभारत)

स्वास्थ्यलक्षण-कफ (शीत) पित्त (ऊष्ण) और वायु ये तीन शरीर के गुण (दोष या धातु) होते हैं। इन गुणों की जो साम्यावस्था होती है उसको (शारीरिक) स्वास्थ्य कहते हैं।

सत्त्वं रजस्तम इति मानसाः स्युस्त्रयो गुणाः ।

तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम् । (महाभारत)

सत्त्व, रजस् और तमस् ये मन के तीन गुण होते हैं। इन गुणों की जो साम्यावस्था होती है उसको (मानसिक) स्वास्थ्य कहते हैं।

समदोपः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमना: स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ (सुश्रुत)

जिसके (सत्त्वादिगुण तथा वातादि) दोष, (जठर तथा काय को) अग्नि, (रसादिसप्त) धातु, (पुरीषादि) मल इनकी क्रियाएँ सम हों तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन प्रसन्न हों वह स्वस्थ कहलाता है।

वक्तव्य-इस श्लोक के प्रथमार्ध में स्वास्थ्य के जो लक्षण दिये हैं वे व्यक्ति से स्वयं अनुभूत होनेवाले अर्थात् स्वप्रत्यय (Subjective) हैं। इसके विपरीत द्वितीयार्ध के लक्षण जितने स्वप्रत्यय हैं. उतने ही दूसरों के समम में आनेवाले अर्थात् परप्रत्यय (Objective) भी हैं। अतः ये लक्षण अपना स्वास्थ्य तथा अस्वास्थ्य सममने के लिए जितने उपयुक्त हैं उतने ही दूसरों के स्वास्थ्यास्वास्थ्य का अनुमान करने के लिए भी उपयुक्त होते हैं- दोषादीनां त्वसमतामनुमानेन लक्षयेत्। अप्रसन्नेन्द्रियं बीच्य पुरुषं कुशलो भिपक्।। (सुश्रुत) साम्यम्-समता (Normal State)-स्वरूपादप्रच्युतिः । अरुणदत्त ॥I गुण-शारीरिक गुणों को वैद्यक में धातु, दोष तथा मल कहते है-शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात्। वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मला: ॥ शाङ्र्ङ्गधर ॥ मानसिक गुणों को साम्यावस्था में वैद्यक में

गुण ही या महागुण कहते हैं और विपमावस्था में दोष कहते हैं और दोषों में सत्त्व का समादेश नहीं होता-सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रयः प्रोक्ता महागुणाः ॥ रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषाबुदा- हृतौ। अष्टांगसंग्रह॥ आगे के श्लोक का वक्तव्य भी देखें। प्रथम श्लोक में शरीरक्रिया विज्ञान की दृष्टि से, द्वितीय श्लोक में मनोविज्ञान की दृष्टि से और तृतीय श्लोफ में इन दोनों के साथ-साथ नैदानिकीय (Clinical) और लाक्षणिक (Symptomatic) दृष्टि से स्वास्थ्य की परिभाषा वर्णित है। स्वास्थ्य की इतनी सुन्दर, सर्वसंग्राहक और व्यावहारिक परिभाषा अन्यत्र मिलना मुश्किल है।

विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।

सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥ (चरक)

रोगारोग्यन्याख्या-शरीर के बातादि दोषों का तथा रसरक्तादि धातुओं का वैषम्य (Abnormal state) विकार है और उनका साम्य प्रकृति (स्वास्थ्य) है। (वैद्यक में) आरोग्य के लिए सुख संज्ञा और विकार के लिए दुःख संज्ञा होती है वक्तव्य-शारीरिक स्वास्थ्य जैसे वातादि त्रिदोषों की साम्यावस्था पर निर्भर होता है वैसे मानसिक स्वास्थ्य सत्त्वादि त्रिगुणों की साम्यावस्था पर निर्भर होता है। भेद अस्वास्थ्य की उत्पत्ति में है। शारीरिक अस्वास्थ्य वातादि तीनों दोषों की विषमता से होता है, परन्तु मानसिक अस्वास्थ्य सत्त्व छोड़कर शेप दो ही गुणों के वैषम्य से होता है- सत्त्वेतरं च द्वंद्व च मानसामयहेतवः। (काश्यपसंहिता) यह भेद सत्त्वगुण के अविकारित्व के कारण है- तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्। सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ। (गीता)

कि भाग्यं देहवतामारोग्यं का फली कृषिकृत्।

कस्य न पापं जपतः कः पूर्णो यः प्रजावान् स्यात्॥ (शंकराचार्य)

आरोग्य के लाभ-मनुष्यों के लिए (वस्तुतः) भाग्य कौन सा है! आरोग्य; धनधान्यवान् कौन है ? किसान; पाप किसको नहीं लगता है ? जप करने वाले को; पूर्ण कौन है ? बालबच्चेवाला।

धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं, धनानामुत्तमं श्रुतम्।

लाभानां श्रेष्ठमारोग्यं, सुखानां तुष्टिरुत्तमा ॥ (महाभारत)

धनप्रद गुणों में दाद्य (इमानदारी, चतुरता); संपत्ति में विद्या; लाभों में आरोग्य और सुखों में संतोष श्रेष्ठ है।

सुखं स्वपित्यनृणवान् व्याधिमुक्तश्च यो नरः।

सावकाशैस्तु यो भुंक्ते, यस्तु दारैर्न संगतः ॥ (शौनक)

जो ऋणहीन है, जो व्याध्रियों से मुक्त है, जो शान्ति से भोजन करता है, जो स्त्री युक्त नहीं है वही मनुष्य सुख से नींद ले सकता है।

को धर्मो भूतदया; किं सौख्यं नित्यमरोगिता जगति।

कः स्नेहः सद्भावः कि पाण्डित्यं परिच्छेदः ॥ (हितोपदेश)

धर्म कौन सा है ? प्राणीमात्र पर दया करना; सौख्य कौन सा है ? सदैव व्याधिनिर्मुक्त रहना; स्नेह कौन सा है? (प्राणिमात्र के प्रति) सद्भाव रखना; पाण्डित्य कौन सा है? परिच्छेद। वक्तव्य-परिच्छेद-युक्तायुक्त, हिताहित, न्याय्यान्याय्य इत्यादि में भेदकर के निर्णय करने की बुद्धिमत्ता-परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः। अपरिच्छेदकतृ णां विपदः स्युः पदे पदे (हितोपदेश)

धनं रूपमवैक्लव्यं, धनं कुलं सुमङ्गलम्।

धनं यौवनमम्लानं, धनमायुर्निरामयम् ॥ (चाणक्यनीतिशास्त्र)

विकाररहित रूप, सुमङ्गल कुल, म्लानतारहित (स्फुर्तीला) यौवन और नीरोग जीवन धन है।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च

प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।

वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या

षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥ (महाभारत)

हे राजन् ? धनप्राप्ति, सदैव शरींर स्वास्थ्य, मधुरभाषिणी प्रियपत्नी, आज्ञाकारी पुत्र, धनोत्पादक विद्या ये छः संसारी जीवन के सुख हैं।

आरोग्यं विद्वत्ता सज्जनमैत्री सहाकुले जन्म।

स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः ॥ (शार्ङ्गधरपद्धति).

आरोग्य, विद्वत्ता, सज्जनों से मित्रता, अच्छे कुल में जन्म (हर एक बात में) स्वावलम्बन ये मनुष्यों के धन के विना भी ऐश्वर्य हैं।

सुभिक्षं कृपके नित्यं, नित्यं सुखमरोगिणि।

भार्या भर्तुः प्रिया यस्य तस्य नित्योत्सवं गृहम्॥ (चाणक्यशतक)

किसान के यहाँ सदैव (धान्य का) सुभिक्ष रहता है; नीरोग को सदैव सुख मिलता है और जिसकी पत्नी प्रिय रहती है उसके घर में सदैव मंगल रहता है।

यथा नेच्छति नीरोगः कदाचिद् सुचिकित्सकम्।

तथाऽऽपद्रहितो राजा सचिवं नाभिवाञ्छति ॥ (पंचतन्त्र)

जैसे, नीरोग मनुष्य चिकित्सक अच्छा होने पर भी किसी समय उसके पास (पाश) में जाना नहीं चाहता, बैसे (अन्तर्बाह्य) आपत्तियों से मुक्त राजा मन्त्री के पास (पाश) में जाना नहीं चाहता।

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं

जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते।

अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्॥ (कुमारसंभव)

(हे पार्वति ?) यहाँ पर तुम्हें (होमादि) क्रियाओं के लिए समिधा, दर्भ आसानी से मिल रहे हैं? स्नानविधि के लिए जल योग्य है ? तपाचरण अपने बल पर ही चल रहा है ? (क्योंकि) धर्माचरण में शरीर ही आद्य साधन होता है। वक्तव्य-शरीर-स्वस्थशरीर, व्याधितशरीर बाधा डालता है, 'आलस्यं स्त्रीसेवा' श्ोक देखिए। आद्यं धर्मसाधनम्-धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थों का मूलभूत आधार-धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः। अतो रुग्भ्यस्तनुं तेन्नरः कर्मविपाकविद् ॥ (शार्ङ्गधर) इस श्लोक के प्रथम तीन पादों में शंकर जी ने स्वयं एक गुपचर के समान ब्रह्मचारी का रूप धारण करके पार्वती से पूछे हुए तीन प्रश्न हैं। इनका स्वरूप राजनैतिक (Political) है और तपाचरण में जरा सा भी कष्ट होता हो तो पार्वती को पता न लगे इस प्रकार उसको मालूम करना इनका उद्देश्य है।

पुरस्य दाढर्ये योगस्य सिद्धिः सर्वार्थसाधनो।

अखण्डानन्दसिद्धिश्च फलं तेनैव जायते ॥ (जीवानन्द)

आरोग्यमाहात्म्य-(शरीररूपी) नगर दृढ (स्वस्थ) होने पर योग की सर्वार्थ साधक तथा शाश्वत आनन्दप्रदायक सिद्धि फलरूपेण उसो के द्वारा प्राप्त होती है।

पुराभिमानो न वृथा, तद्दाढर्येन विना कथम्।

चित्तस्वास्थ्यं, विना तच्च् शिवभक्तिदृढा कथम्॥ (जीवानन्द)

शरीर स्वास्थ्य का प्रेम व्यर्थ नहीं है, क्योंकि उसके विना चित्त स्वास्थ्य कहाँ से होगा ? और उसके विना शंकर जी की दृढ भक्ति कैसे होगी ?।

सर्वमेव परित्यज्य शरीरमंनुपालयेत्।

शरीरस्य प्रणष्टस्य सर्वमेव विनश्यति ॥ (चाणक्यनीतिशास्त्र)

सब का परित्याग करके प्रथम शरीर (स्वास्थ्य) का रक्षण करें। क्योंकि शरीर नष्ट होने पर सब का नाश हो जाता है।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥ (अष्टांगहृदय)

धर्म, अर्थ, तथा विविध सुखों का साधनभूत दीर्घजीवित चाहने वाले को वैद्यकशास्त्र के (आहार-विहार, आचार-विचार संबंधी) उपदेशों का आदर कर तदनुरूप आचरण करना चाहिए।

शरीरमेतायतनं सुखस्य दुःखस्य चाप्यायतनं शरीरम्।

यद्यच्छरीरेण करोति कर्म तैनेव देही समुपाश्नुते तत्।। (सुभाषितावलि)

स्वास्थ्य का अधिष्ठान केवल शरीर है और रोग का अधिष्ठान भी शरीर ही है। जीव शरीर द्वारा जो-जो कर्म करता है उसीसे ही वह स्वास्थ्य या रोग का अनुभव करता है। वक्तव्य-सुख-दुःख या रोगारोग्य मनुष्य के कर्मों का ही फल होता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं होता है। इसलिए तात्त्विक दृष्टया ज्ञानी मनुष्य वैद्यकोपदिष्ट मार्गानुसार चलकर जीवन भर अपना स्वास्थ्य बनाये रख सकता है। परन्तु इस संसार में मनुष्य सदैव अपना स्वामी नहीं हो सकता, उसपर समाज, परिस्थिति, व्यवसाय इत्यादि के अनेक बंधन ('अथामिवेशः सततातुरान् नरान्' श्लोक देखिए) होते हैं जिनके कारण उसका स्वास्थ्य एक सा नहीं रहता, कभी-कभी उसको रोग पीडित होना पड़ता है। यही व्यावहारिक सत्य नीचे के वचनों में बतलाया है।

शारीरो मानसो वाऽपि कच्चिदेनं न बाधते।

संतापो वाऽभितापो वा, दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥ (रामायण)

(रामचन्द्र जी पूछने हैं-) पिता जी को कोई शारीरिक या मानसिक व्याधि तो पीडा नहीं दे रही है? क्योंकि सदा सर्वदा शारीर स्वास्थ्य दुर्लभ होता है।

कस्य दोषः कुले नास्ति, व्याधिना को न पीडितः !

केन न व्यसनं प्राप्तं, यः कस्य निरन्तरा ॥ (गरुडपुराण)

किसके कुल में दोष नहीं पाया जाता ? (जीवन सर में) व्याधि से पीडित नहीं हुआ ऐसा कौन है? (जीवन भर में) आपत्ति से पीडित नहीं हुआ ऐसा कौन है? किसकी संपत्ति शाश्वत है ?

आत्मानमेत्र मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।

तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत न त्रसेत् ॥ (चरक)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभापितसाहित्ये रोगारोग्यविज्ञानीयो नाम पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।

तात्पर्य। अपने को ही रोगारोग्य का कर्ता समझे और श्रेयस्कर मार्ग का सदैव अवलंबन करें, फिर डरने का कोई कारण नहीं होता। इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैय्यकरहस्यदीपिकायां रोगारोग्यविज्ञानीयोनाम पश्चमोऽध्यायः समाप्तः ।

प्राणायामविज्ञानम्

(१) **वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां, नियन्ता प्रणेता च मनसः,**

सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः, सर्वेन्द्रियार्थानासभिवोढा, आयुपोनुवृत्तिप्रत्ययभूतः ॥ (चरक)

वायु शरीररूपी यन्त्र का धारण करनेवाला, शरीर की छोटी बड़ी (सब प्रकार की) चेष्टाओं का प्रवर्तक, (अनभीष्ट विपयों को ओर जानेवाले) मन का नियन्त्रक और (अभीष्ट विपयों की ओर जानेवाले मन का) प्रेरक, सब इन्द्रियों का भी प्रेरक, सब इन्द्रियाथों को मनकी ओर ले जानेवाला और आयु की निरन्तरता का साक्षी होता है।

(२) **वायुरायुर्वलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्।**

वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः ॥ (चरक)

वायु जीवन है, वायु बल है, वायु शरीरधारक है, वायु यह सर्व विश्व है। और वायु ही सबका प्रभु कहा गया है।

(३) **वायुरेव महाभरूतं वदन्तु निखिला जनाः ।**

आयुरेवैप भूतानामिति मन्यामहे वयम्॥ (जगन्नाथपंडित)

वायु को लोग (पंचमहाभूतों में से एक) महाभूत भले ही कहें, हम तो उसको सब भूतों (प्राणियों) के प्राण ही समभते हैं।

(४) **यावद् वायुः स्थितो देहे तावजीवनमुच्यते।**

मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥ (हठयोगप्रदी०)

जब तक शरीर में वायु है तबतक जीवन है। उसका निकल जाना मृत्यु है, इसलिए उसका नियन्त्रण (प्राणायाम का अभ्यास) करें।

(५) **शरीरं हि विना वायुः समतां याति दारुभिः ।**

वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ॥। (रामायण)

वायु के बिना शरीर लकड़ियों के समान (निर्जीव अचेतन) हो जाता है। इसलिए वायु ही शरीर का प्राण है, स्वास्थ्य है, संक्षेप में सब कुछ है।

(६) **प्राणमाहुर्मातरश्विनं वातो ह प्राण उच्यते।**

प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ (अथर्ववेद)

प्राण को मातरिश्वा कहते हैं और वायु को प्राण ही कहते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान सर्व प्राण में ही अधिष्ठित है।

(७) **यावदस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः ॥** (कौषीतकी उप०)

जब तक शरीर में प्राण होता है तब तक जीवन होता है।

(८) **येन जीवति जीवोऽयं निर्जीवो यं विना भवेत्।**

स प्राण इति विख्यातो वायुः क्षेत्रचरः परः ॥ (शार्ङ्गरपद्धति)

जिससे (शरीरस्थ) यह जीव जीवित रहता है, जिसके बिना (शरीर) निर्जीव हो जाता है वह प्राणवायु कहलाता है। शरीर में विचरण करने वालों में यह वायु सर्वश्रेष्ठ है।

वक्तव्य-प्राणवायु-उपयुक्त वचनों में प्राण या प्राणवायु का जो वर्णन किया गया है उससे व्यावहारिक दृष्टया यह वायु आक्सिजन (oxygen) है यह स्पष्ट होगा। शाङ्गंधरसंहिता में उसको 'विष्णुपदामृत'या 'अम्बरपीयू' कहा है-नाभिस्थ: प्राणपवनः स्पृष्टवा हृत्कमलान्तरम्! कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्॥ पीत्वा चाम्बरपीयूपंपुनरायाति बेगतः। प्रीणयन देह मखिलं जीवयज्जठरानलभ्॥।

(९) **सुपुम्नया ब्रह्मरन्ध्रमारोहत्यवरोहति।**

जीव: प्राणसमारूढो रज्वां कोल्हाटिको यथा॥ (शाङ्गंधर दीपिका)

जैसे कोल्हाटी रस्सी से ऊपर चढ़ता है और नीचे उतरता है (और अपने खेलकूद करता है) वैसे प्राणवायुयुक्त जीव सुपुम्ना से ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक चढ़ता है और वहाँ से नीचे उतरता है (और इस प्रकार अपने जीवन व्यापार करता है)।

वक्तव्य-इस वचन में यह बतलाया है कि प्राणवायु शरीर को केवल जीवित ही नहीं रखता, वह जीव क अपने सर्व व्यापार करने में भी आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त इसमें शरीरकार्यविज्ञान की दृष्टि से (Physiologically), संवेदी (Sensory) :और प्रेरक (Motor) कार्य कैसे होते हैं यह भी बतलाया है। सुपुम्ना-पृष्ठवंश या मेरुदण्ड (Spinal column) के विवर (Spinal canal) में स्थित यह नाड़ीतन्तुओं की बनी एक रज्जु (Spinal cord) है। दोहरे चौहरे लोहमार्गों (Railway lines) के समान इसमें नाडी तन्तुओं (Nerve fibers) से बने अनेक मार्ग या पथ (Tracts) होते हैं। इनमें जो पथ ऊपर मस्तिष्क की ओर जानेवाले होते हैं उन्हें संवेदी पथ कहते हैं और जो मस्तिष्क से नीचे की ओर जानेवाले होते हैं उन्हें 'प्रेरक' पथ कहते हैं -- मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदन्ते निषण्णो मध्ये नाडी सुघुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याभिरूपा। धुस्तूरस्मेरपुष्पग्रथिततमवपुः कन्दमध्या शिरःस्था; वज्राख्या मेढदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमेऽस्या ज्वलंती॥ (षटचक्र-निरुपण) । या मुण्डाधारदण्डा(Spinal columni) न्तरविवर (canal) गता। (त्रिपुरासारसमुच्चय) । इडा वामे स्थिता वाडी दक्षिण पिङ्गला मता। तयोर्मध्यगता नाडी सुपुम्ना वंशमाश्रिता ।! षट्चक्रविवृति॥ वंश-पृष्ठवंश। कोह्वाटिक-सर्कसमें रस्सीपर काम करनेवाले आजकल के जैसे खिलाड़ीहोते हैं वैसे खुलीसड़क में रस्सीपर खेलकूद दिखाकर अपनी उपजीविका करनेवाले प्राचीन कालके जंगली या आदिवासी लोग। सुपुम्ना के कार्य को प्रदर्शित करने के लिए कोल्हाटिक का यह दृष्टान्त बहुत ही यथार्थ तथा हृदयंगम है।

(१०) **प्राणाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, प्राणेन जातानि**

जीवन्ति, प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तैत्तिरीयोपनिनद्।

प्राण से ही जीवसृष्टि उत्पन्न होती है, (उत्पन्न होने पर) प्राण से ही जीवित रहती है और (नाश के समय) प्राण में ही जाकर विलीन होती है।

(११) **प्राणं देवा अनुप्राणन्ति मनुष्याः पशवश्च ये।**

प्राणो हि भूतानामायुः तस्मात्सर्वायुपमुच्यते ॥ (तैत्तिरीय)

देवता, मनुष्य तथा पशुपक्षी प्राण के अनुगामी होकर प्राणन (जीवन) किया करते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिए वह 'सर्वायुष' (आयु प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ) कहलाता है।

(१२) **सर्वमेव त आयुर्यन्ति ये प्रणं ब्रह्मोपासते।**

प्राणो हि भरूतानामायुः तस्मात्सर्वायुषमुच्यते । (तैत्तिरीय)

जो प्राण की ब्रह्मरूप से उपासना करते हैं वे पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिए वह 'सर्वायुष' कहलाता है।(१३) आथर्वणीराङ्िरसी देवी मनुष्यजा उत। ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्रण जिन्बसि ॥ (अथर्ववेद) प्राणायामलाभ-हे भण ! जब तक तुम प्रेरणा करते (हुए शरीर- में रहते) हो तब तक आथर्वणी, आंगिरसी, दैवी और सनुष्यकृत औषधियाँ सफल होती हैं।

(१४) **त्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनास्यासततपराः।**

अभूवन्न्तकभयासस्मात्पवनमस्यसेव् ॥ (हठयोगप्रदीपिका)

ब्रह्मादि देवता भी मृत्यु के भय से पवनाभ्यास (प्राणायाम) में तत्पर हुए: इसलिए प्राणायाम का अभ्यास करें। (१५) दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दहन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ (मनु) जैसे अग्नि में धौंके जाने वाले धातुओं के मल नष्ट होते हैं, वैसे प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष नष्ट होते हैं।

(१६) **यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद् वश्यः शनैःशनैः।**

तथैव सेवितो वायुरन्यथा इन्ति साधकम्॥। (हठयोगप्रदीपिका)

जैसे सिंह, हाथी, बाघ धीरे-धीरे वशमें होते हैं (शीत्र नहीं), वैसे धोरे-धीरे अभ्यास करने पर भ्राण (वशमें होता है), शीघ्रवा करने पर वह साधक का नाश करता है।

(१७) **त्राणायानेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो मवेत्।**

अयुक्तस्वासयोगेन सर्वरोगस्य संभवः ॥

(हठयोगप्रदपिका) विधियुक्त किये हुए प्राणायाम से सर्व रोगों का नाश होता है और अविधिवत् किये हुए प्राणायाम से सर्व प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।।!

(१८) **ग्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति।**

आचार्याणां तु केषांचिदन्यत्कर्म न संमतश्॥ (हठयोगम्दीपिका)

केवल प्राणायाम करने से शरीरगत सब दोप शुष्क (होकर नष्ट) हो जाते हैं; इसलिए कुछ आचार्यों को (प्राणायाम के अतिरिक्त) अन्य कर्म करना संमत नहीं है।

(१९) **मूर्च्छिंतो हरते व्याघीन्, मृतो जीवयति स्वयम्।**

वद्धः खेचरतां धत्ते रसो वायुश्च पार्वति ॥ (हठयोगप्रदीपिका)

हे पार्वती ! मूर्च्छिंत वायु और पारद रोगों का नाश करते हैं, मृत वायु और पारद पुनर्जीवन देते हैं तथा बंद्ध वायु और पारद आकाशगमन सिद्धि प्रदान करते हैं।

वक्तव्य-मूर्च्छित-औषधियों से जिसकी चऊचलता नष्ट की गयी है ऐसा रस और कुम्भक के अन्त में रेचक से निवृत्त वायु। मृत-भस्म हुआ पारद और ब्रह्मरन्ध्र में लीन वायु।

(२०) **पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते।**

मनश्च वध्यते येन पचनस्तेन बध्यते ॥ (हठयोगप्रदीपिका)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोिन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकसुभाषितसाहित्ये प्राणायामविज्ञानीयो नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।जिससे वायु का निग्रह होता है उससे सन का भी निग्रह होता है और जिससे मन का निप्रह होता है उससे वायु का भी निग्रह होता है।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैग्करहस्यदीपिकायां प्राणायामविज्ञानीयोनाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।

अन्तर्बाह्यशौचविज्ञानम्

अथातोऽन्तर्बाह्यशौच विज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) **अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।**

दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेपां धर्मसाधनम्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति)

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, शौच, इन्द्रियनिग्रह, दान, दया, दम और क्षमा ये सबके लिये धर्मप्राप के साधन होते हैं।

वक्तव्य-शौच-शरीर और मन की अन्तर्बाह्य स्वच्छता। गीता के तेरहवें अध्याय में शौच क्षेत्रज्ञ के ज्ञान का और सोलहवें अध्यायमें दैवी संपद् का एक लक्षण बतलाया है। सर्वेषां धर्मसाधनम्-त्राह्मणा-द्याचाण्डालान्तम् । मिताक्षरा। मनुष्य का धर्म, जाति, पंथ कोई हो प्रत्येक के लिए धर्म की प्राप्ति का साधन

(२) **यो वर्तते शुचित्वेन स वैश्वानर उच्यते।**

यो वर्ततेऽशुचित्वेन स वै श्वा नर उच्यते । (सुश्लोकलाघव)

जो शुद्धता से रहता है वह वैश्वानर और जो अशुद्धता से रहता है वह श्वान कहलाता है।

(३) **मनःशौचं, कर्मशौचं, कुलशौचं तथैव च।**

शरीरशौचं, वाक्शौचं शौचं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ (महाभारत)

पञ्चविध शौच-मन का, कर्मका, कुलका, शरीर का तथा वाणोका इस प्रकार शौच पञ्चविध होता है।

(४) **पञ्चस्वेतु शौचेषु हृदि शौचं विशिष्यते।**

हृदयस्य तु शौचेन स्वर्गं गच्छति मानवः ॥। (महाभारत)

इन पाँचों शौचों में मनःशौच विशेष होता है। उसके शौच से मनुष्य स्वर्ग में जाता है।

(५) **शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमभ्यन्तरं तथा।**

मृज्जलाभ्यां स्मृतं वाह्यं मनःशुद्धिस्तथान्तरम् ॥ (वसिष्ठसंहिता)

द्विविध शौच-बाह्य और आभ्यन्तर करके शौच दो प्रकार का होता है: मिट्टी और जल से बाह्य तथा मनःशुद्धि से आभ्यंतर शौच होता है। वक्तव्य-द्विविधं शौचम् - मनुष्यसमाज की दृष्टि से शौच के दो विभाग होते हैं, एक वैयक्तिक (Individual) और दूसरा सार्वजनिक (Public) या सामाजिक (Social)। इस वचन में जो द्विविध शौचबतलाया है वह वैयक्तिक शौच का है, एक बाह्य शरीर का और दूसरा अंतः शरीर का अर्थात् मन का। मनःशुद्धिसाधन 'अद्भिर्गात्राणिशुद्ध्यन्ति इस कोक से (पृष्ठ ६६) आगे अनेक वचनों में बताये गये हैं। बाह्य वैयक्तिक शुद्धि का जैसे अपने शरीर से संबन्ध होता है वैसे समाज से भी होता है। उसके लिए क्या करना चाहिए इसका दिग्दर्शन 'क्लृप्तकेशनखश्मश्रु' इस श्ोक से (पृष्ठ ७१) आगे के वचनों में किया गया है।

(६) **ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनोव।र्युपाञ्जनम्।**

वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् ॥ (मनु)

शुद्धि के साधन-ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मिट्टी, मन, वायु, जल, उपाञ्जन (लीपापोती) कर्म, सूर्यप्रकाश और काल (का बीतना) ये मनुव्यों के पास शुद्धि के साधन होते हैं।वक्तव्य-आहार :- (१)

सान्त्विक, युक्त या मित आहार। (२) निराहार, लंघन, उपवास-पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽपि शुद्धिहेतवः। याज्ञवल्क्यस्मृति।

(७) **भस्मना शुद्धयते कांस्यं, ताम्रमम्लेन शुद्धयात।**

रजसा शुद्धयते नारी, नदी वेगेन शुद्धयति ॥ (वृद्धचाणक्य)

राखी से कांसा, (नींबू, इमली, मट्ठा इत्यादि) अम्लद्रव्यों से तांबा, (फिर से) मासिक धर्म होने पर स्त्री और प्रवाह से नदी ये शुद्ध होते हैं।

वक्तव्य-वर्षभर नदी के दोनों तटोंपर तथा पानी में बहुत गंदगी होती रहती है। बरसात में जब यह गंदगी बह जाती है तब कुछ काल तक उसका पानी शुद्ध रहता है। वैसे ही जो नदी बारहों मास प्रवाह युक्त रहती है उसका भी पानी शुद्ध रहता है। अतः यदि पीने के लिए नदी का पानी लेना हो तो जहाँपर प्रवाह तेज हो वहाँ से लिया जाय- बहता पानी निमला, बन्धा गन्दा होय।

(८) **संमार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च।**

गवां च परिवासेन भूमिः शुद्धयति पश्चभिः ॥ (मनु)

भूमि की शुद्धि-झाड लगाना, गोबर से पोतना, (जल से) सिंचन करना, खोद (कर ऊपर की मिट्टी को फेंक) ना, गायों को बाँधना, इन पाँच साधनों से भूमि की शुद्धि होती है।

(९) **लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला।**

गोमयालेपनं तस्मात् कर्तव्यं पाण्डुनन्दन ।। (महाभारत)

गोमय-गाय के ताजे गोबर में नित्य पवित्र, मङ्गलकारी लक्मी वास करती है। इसलिए हे पाण्डव गोमय से लेपन किया जाय। वक्तव्य-गोमय में जीवाणुनाशक गुण होता है यह आधुनिक विज्ञान से सिद्ध हुआ है। अतः दूषित भूमि को शुद्ध करने के लिए: ताजे गोबर का हमारे यहाँ उपयोग करने का जो रिवाज है वह योग्य है।

(१०) **यथा सूर्यांशुभिः स्पृष्टं सर्वं शुचि भविष्यति।**

तथा त्वदर्चिंनिर्दग्धं सर्वं शुचि भविष्यति ॥ (महाभारत).

सूर्य और अग्नि-जैसे सूर्य की किरणों से स्पृष्ट (प्रभावित) हुए सब द्रव्य शुद्ध हो जाते हैं बैसे (हे अग्नि !) तेरी ज्वालाओं से दग्ध हुए सब द्रव्य शुद्ध हो जाते हैं।

वक्तव्य-वैद्यकीय दृष्ट्या सूर्य और अग्नि शुद्धि की दृष्टि से बहुत ही महत्व के साधन हैं। इनके द्वारा दूषित वस्तुओं का निर्जीवाणुकरण (Sterilization) होकर वे निर्दोष हो जाया करती हैं। अर्थात् उनमें यदि कोई उपसर्गकारी (Infective) रोगोत्पादक सूक्ष्मजीव हों तो वे नष्ट होते हैं। शस्त्रकर्म पूर्व इसलिए 'अग्नितप्तेन शस्त्रेण छिन्द्यात्' ऐसा सुश्ुत ने कहा है और डल्हण ने उसपर 'अन्यथा पाक (Suppuration) भयं स्यात' ऐसी टीका की है। सूचिकाभरण (Injection) द्वारा औषधि प्रदान करते समय निर्जीवाणुकरण (Sterilization) पर ध्यान न देने से अनेक रोग ('उपायसंदर्शनजा' श्लोक का वक्तव्य देखिए) उत्पन्न हुआ करते हैं। उसके निवारण के लिए सुई को खौलते हुए पानी से शुद्ध करने के लिए कहा है-सूच्याऽतिसूक्ष्मया तोयस्विन्नयाऽतिप्रयत्नतः ॥ शुद्धीकरण की दृष्टि से सूर्य के उपयोग के लिए नीचे के ऋक का वक्तव्य देखिए।

(१३) **पन्थानश्च विशुद्ध्यन्ति सोमसूर्यांशुमारुतैः ।** (याज्ञवल्क्यस्मृति)

मार्गशुद्धि-रास्ते (तथा अन्य खुले स्थान) चन्द्रसूर्य की रश्मियों से तथा वायु (प्रवाह) से शुद्ध होते हैं। मनःशुद्धि-मन की शुद्धि धर्म (के अनुसार आचार-विचार आहार-विहार रखने) से तथा आध्यात्मिक विद्या (का अभ्यास करने) से होती है।

(१४) **आत्मानदी संयमपूर्णतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।**
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुनन्दन न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा॥ (महाभारत)

हे पाण्डव ! (यदि तुम अपने अन्तरात्मा की शुद्धि चाहते हो तो) सत्य जिसका जल है, शील जिसके तट हैं, मनःसंयम जिसमें चढ़ने उतरने का घाट है, दया जिसकी लहरें हैं ऐसी आत्मज्ञान रूप नदी में तू स्नान किया कर; केवल पानी से अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती।

(१५) **मृत्तिकानां सहस्त्रेण चोदकानां शतेन च।**
न शुद्ध्यति दुराचारो भावपहतचेतनः ॥ (बृहस्पति)

हजारों (प्रकार की तथा हजारों बार) मिट्टियों से (शरीर रगड़ने पर), तथा सैकड़ों (नदियों के या तीर्थों के) जल से (शरीर स्नान करने पर दुष्ट) भावनाओं से जिसका चित्त मारा गया है ऐसा दुराचारी शुद्ध नहीं होता है।

(१६) **शुद्ध्यति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते।**
वसनमिव क्षारोदैर्भक्तया प्रक्षाल्यते चेतः ॥ (प्रबोधसुधाकर)

श्रीकृष्णपदकमल की भक्ति के बिना अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती, जैसे क्षार (सोडा, साबुन) के पानी से वस्त्र स्वच्छ होता है वैसे भक्ति से मन शुद्ध होता है।

(१७) **मनःशुद्धयैव शुद्धिः स्याद् देहिनां नात्र संशयः ।**

वृथा तद्व्यतिरेकेण कायस्यैव कदर्थनम् ॥ (ज्ञानार्णव)

मनकी शुद्धि से ही मनुष्यों की वास्तविक शुद्धि हुआ करती है इसमें कोई संदेह नहीं है। उसके बिना (बाह्य शरीर की शुद्धि का प्रयास) शरीर को निरर्थक कष्ट देना है।

(१८) **सर्वेपासेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।**

योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥ (मनु)

शौच-सर्व प्रकार के शौच में अर्थ शौच सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। इसलिलए जो अर्थ में शुद्ध है वही वास्तव में शुद्ध होता है, पानी मिट्टी से शुद्ध हुआ शुद्ध नहीं होता।

वक्तव्य-अर्थशौच-(१) धनार्जन में शुद्धता। यह श्लोक 'ज्ञानं तपोऽग्निराहारो' इस श्ोक के (४ठ६३) पश्चात् आया है और कुल्लूकभट्ट ने अपनी मन्वर्थमुक्तावलि में इसका अर्थ धन की दृष्टि से किया है-अर्थ- शौचमन्यायेन परधनहरणपरिहारेण यद्धनेहा तत्परं प्रकृष्टं स्मृतम् ।। परन्तु इस अर्थ की अपेक्षा आगे दिया हुआ अर्थ संदर्भ की दृष्टि से अधिक अच्छा है। (२) विषय या इन्द्रियार्थ में शुचि। अर्थ का एक अर्थ इन्द्रियार्थ या शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध के विषय-इन्द्रियेभ्यः परा अर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ गीता। इसका तात्पर्य यह है कि सेवन किये जाने वाले इन्द्रियार्थों की शुचिता सर्वश्रेष्ठ शुचिता है और जो इन्द्रियार्थों की शुच्यशुचिता का विचार करके केवल पवित्र, शुचि, हितकर इन्द्रियार्थों का सेवन करता है वही वास्तव में शुचि होता है, पानी और मिट्टी से शरीर और बर्तनों को साफ करने वाला नहीं। इन्द्रियजय की दृष्टि से जैसे सब इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय (जिह्वा) श्रेष्ठ होती है, क्योंकि उसकी जीत से सब इन्द्रियों की जीत हो जाया करती है ('तावज्जितेन्द्रियो न स्यात्' श्लोक देखिए), वैसे अर्थशौच की दृष्टि से रसनेन्द्रियार्थ (रस, षड्रस अन्न) की शुद्धि सर्वश्रेष्ठ होती है, क्योंकि उसकी शुचिता पवित्रता रखने से सब इन्द्रियार्थों की शुद्धि होती है या शुद्ध इन्द्रियार्थ सेवन करने के लिए मन बलवान् तथासिद्ध होता है। इसलिए कुछ मनीपी सर्व अर्थ शुद्धि में रस या अन्न की शुद्धि को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः' इस वचन का वक्तव्य (पृष्ठ ६०) देखिए।

(१९) **उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।**

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ॥ (उत्तररामचरित)

जन्म से ही जो शुद्ध है उस (सीता) को अन्य शुद्धिकर साधनों से क्या करना है? तीर्थोदक और अग्नि (जो उत्पत्तिपरिपूत रहते हैं) अन्य शुद्धिकर साधनों द्वारा शुद्धि करने योग्य नहीं होते हैं। वक्तव्य- इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि किसी द्रव्य की उत्पत्ति या किसी कर्म की क्रिया यदि संबंधित सर्व बातों की शुद्धता की ओर ध्यान देकर की जाय तो फिर उत्पन्न द्रव्य और सिद्ध क्रिया अन्य शुद्धिकर साधनों से शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती, यदि इस प्रकार से न किया जाय तो शुद्धीकरण की आवश्यकता होती है। वैद्यकीय दृष्टया प्रत्येक का एक-एक व्यावहारिक उदाहरण दिया जाता है।

दूध-बझारू दूध गौ का स्वास्थ्य, स्तन-इस्त-पात्रादिकी शुद्धता की ओर ध्यान न देकर दोहा जाता है, जिससे वह प्रायः दूषित रहता है। अतः अग्नि से शुद्ध किये बिना उसका सेवन हानिकर होने की संम्भावना बराबर बनी रहती है। इसके विपरीत स्वस्थ गौ का स्तनहस्तपात्रादि की ठीक शुद्धि करके दोहा हुआ दूध उत्पत्ति- परिपूत होने से सेवन करने के लिए उसको अ्ग्निद्वारा शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। ताजे निकाले हुए मन्दोष्ण दूध को 'धारोष्ण' दूध कहते हैं और वह अमृतसम बताया है- धारोष्णममृतोपमम्। अष्टांगहृदय ॥I अग्नितप्त करने पर दूध केआगन्तुक दोष जरूर नष्ट हो जाते हैं, परन्तु उसके साथ उसके नैसर्गिक रासायनिक संघंटकों कीहानि भी हो जाती है। धारोष्ण दूध में यह हानि न होने से वह दूध अमृतसम कहा गया है। (२) शस्त्रकर्म-इसमें यदि यन्त्रशस्त्रवस्त्र हस्त इत्यादि के निर्जीवाणुकरण अर्थात् शुद्धता की ओर ध्यान न दिया जाय तो त्रण दूषित होने की संभावना बराबर बनी रहती है। अतः जो शस्त्रचिकित्सक इस शुद्धता की ओर विशेष ध्यान नहीं देते उन्हें अपना शस्त्रकर्म दूषित न हो इसलिए शस्त्रत्रणों पर जीवाणुनाशक द्रव्य का और रोगी को प्रतिजीवी (Antibiotic) औपधियों का उपयोग करने की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत जो शस्त्र- चिकित्सक यन्त्रशस्त्रादि की शुद्धता की ओर विशेष ध्यान देकर शस्त्र- कर्म किया करते हैं उनका वह कर्म उत्पत्तिपरिपूत होने से उन्हें अपना शस्त्रकर्म दूषित (septic) न हो इसलिए उपसर्गनाशक तथा प्रति- जीवी द्रव्यों का बाह्य या आभ्यन्तर उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे शस्त्रकर्म अपूतिक (Aseptic) कहलाते हैं।

(२०) **नान्यमद्यादेकवासा, न नग्नः स्नानमाचरेत्।**

न मूत्रं पथि कुर्वीत, न भस्मनि न गोत्रजे ॥ (मनु)

एक वस्त्र पर भोजन न करें, विवस्त्र होकर स्नान न करें, रास्ते में, अग्नि की रक्षा पर तथा गोशाला में मूत्रोत्सर्जन न करें। वक्तव्य-एकवासा :- दिनरात भर जो एक वस्त्र पहना जाता है, जिसको पहन कर रात में शयन, दिन में भ्रमण, मलमूत्रोत्सर्जन तथा अन्य कर्म किये जाते हैं उसको पहन कर भोजन न करें, किन्तु भोजन के समय स्वतन्त्र धौत वस्त्र या कौशेयक वस्त्र पहने। पाश्चात्य देशों में भी भोजन का स्वतन्त्र पहनावा होता है। न नग्नः स्नानमाचरेत्-यह उपदेश समाज की दृष्टि से है तथा नदी इत्यादि खुले स्थान के स्नान के लिए है।

(२१) **ग्रामावसथतीर्थाणां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि।**

विण्मूत्रं नानुतिष्ठेत, न कर्ष्टे, न च गोव्रजे ॥ (मार्कण्डेयपुराण)

गांव, घर, दीर्थ, क्षेत्र इनके मार्गों में, जोते हुए खेत में, गोशाला में मलमूत्रोत्सर्जन न करें।

वक्तव्य-न कृष्ठे-मनुष्यों के मल मूत्र में अनेक रोगों के विकारी जीवाणु हो सकते हैं। यदि शाक सब्जी, धान्य बोये हुए खेत में मलमूत्र त्याग किया जाय तो तद्गत विकारी जीवाणुओं से शाकादि उपसृष्ट (Infected) होकर मनुष्यों पर अपना उपसर्ग-संक्रान्त कर सकते हैं। अतः ऐसे क्ेत्र में मलत्याग न किया जाय। मल त्यागने के लिए अनाकृष्ट क्ेत्र सर्वोत्तम होते हैं, क्योंकि वहाँ पर त्यक्त मलमूत्र की अच्छी खाद कुछ काल के पश्चात् बन जाती है और वह क्षेत्र अच्छा उपजाऊ बनता है। गोत्रजे-गोशाला में गौ के मल मूत्र होते हैं परन्तु वे अमेध्य नहीं होते, न मनुष्यों की दृष्टि से दूषित रहते हैं। पृष्ठ ६४ पर 'लच्मीश्रचगोमये नित्यं' श्लोक देखिए।

(२२) **क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्वरः शुचिः ।**

न जीर्णमलवद्वासा भवेच विभवे सति ॥ (मनु)

केश और नख काटें, दाढी करें, दमयुक्त होकर रहे, शुभ्र वस्त्र पहनें, शुद्ध रहें, और धन होनेपर फटा और मलीन वस्त्र न पहनें।

(२३) **उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्।**

उपवीतमलङ्कारं स्त्रजं करकमेव च ॥ (मनु)

दूसरों के द्वारा प्रयुक्त हुए पादत्राण, वस्त्रं, जनेऊ, आभूषण, माला, कमण्डलु (जलपात्र) काम में न लावें।

वक्तव्य-दूसरों की वस्तुएँ, विशेषतया त्वचा और मुखनासादि शरीर द्वारों के साथ संबंध रखने वाली, प्रयुक्त न करें। इसमें अस्वच्छताके साथ दूसरों के उपसर्ग (Infection) का संक्रमण होने का डर रहता है।

(२४) **तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च।**

नाधितिष्ठेच्छ कृन्मूत्रं केशभस्मकपालिकाः ॥ (मार्कण्डेयपुर/ण)

वैसे ही (रास्ते में या भूमिपर होने वाले) भूसी, कोयला, हड्डी के टुकड़े, रस्सी, (फटे पुराने) कपड़े, मल, मूत्र, केश, भस्म, कपार इनपर पैर न रक्खें।

वक्तव्य-नाधिविष्ठेत-दृष्टिपूतं न्यसेत्पादम् (पृष्ठ ८१)।।

(२५) **नाप्सु मूत्रं पुरीपं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।**

अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ (मनु)

जलशुद्धिमहत्व-जलाशय में मूत्र, मल, थूक अथवा (मलमूत्रादि) अमेध्य से दूषित अन्य द्रव्य, रक्त या विष न फेकें।

वक्तव्य-पानी जीवन के लिए एक अत्यन्त आवश्यक पेय है। इसके दूषित होने से मनुष्यों के अनेक अन्तर्बाह्य रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। अतः उसको किसी भी प्रकार से अदूषित रखना मनुष्यों का कर्तव्य है। प्राचीन काल में पानी को किसी प्रकार से दूषित करना कितना महत्पाप माना गया था इसकी सत्यता भरतजी के निम्नवचन से स्पष्ट होती है। भरतजी कह रहे हैं कि यदि मेरे कथन से रामचन्द्रजी वनवास गये हों तो मुझे पानी दूषित करनेवाले का पाप लग जाय- पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके। यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ रामायण ॥ अमेध्य-मानुषास्थि शवं विष्ठा रेतो मूत्रार्तवं वसा। स्वेदाश्रुदूषिकाश्लेष्ममलं चामेध्यमुच्यते॥ मिताक्षरा॥

(२६) **मनसश्चक्षुषो यत्र संतोषो जायते भुवि।**

तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसंमतम् ॥ (वास्तुशास्त्र)

वास्तुभूमिशुद्धि-जिस भूमि में मन और नेत्र दोनों को प्रसन्नता हो जाती है उस भूमिपर सबको गृह बनवाना चाहिए ऐसा गर्गादि ऋषियों का मत है।

(२७) **सोपद्रव्यं तथाऽस्वच्छं दुर्गन्धेन समन्वितम्।**

अभद्रदर्शनं वेश्माध्युषितः कः सुखं व्रजेत् ॥

यहशुद्धि-(कीटक मूषकादि के) उपद्रव से युक्त, मलीन, दुर्गन्धित, देखने में अभद्र ऐसे गृह में रहने वाला कौन सा मनुष्य सुखी (स्वस्थ) हो सकता है ?

शौचात्स्वांगजुगुप्सापरैरसंसर्गः । (योगसूत्र)

बाह्यशुद्धि का फल-(बाह्य) शौच (के अभ्यास) से अपने ही मलीन अङ्गों से घृणा और मलीन रहने वाले अन्यों से संसर्ग न रखने की प्रवृत्ति होती है।

(२९) **सच्छुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्म दर्शनयोग्यत्वानि।** (योगसूत्र)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन सङ्कलिते वैद्यकीयसुभाषितसाहित्ये शौचविज्ञानीयो नाम नवमोऽध्यायः समाप्तः ।

अन्तःशुद्धि का फल-(अन्तः) शुद्धि (के अभ्यास) से चित्तशुद्धि, मन की प्रसन्नता. मन की एकाग्रता, इन्द्रियजय और आत्मसाक्षात्कार होने की योग्यता उत्पन्न हुआ करती है।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्यदीपिकायां शौचविज्ञानीयोनाम नवमोऽध्यायः समाप्तः ।

इकाई - 5

अमरकोषः - वनौषधिवर्ग

समीरणो मरुबकः प्रस्थपुष्पः फणिज्जकः।
जम्बीरोऽप्यथ पर्णासे कठिञ्जरकुठेरकौ।
सितेऽर्जकोऽत्र पाठी तु चित्रको वह्निसंज्ञकः।
अर्काह्ववसुकास्फोटगणरूपविकीरणाः।
मन्दारश्चार्कपर्णोऽत्र शुक्लेऽलर्कप्रतापसौ।
शिवमल्ली पाशुपत एकाष्ठीलो बुको वसुः।
वन्दा वृक्षादनी वृक्षरुहा जीवन्तिकेत्यपि।
वत्सादनी छिन्नरुहा गुडूची तन्त्रिकामृता।
जीवन्तिका सोमवल्ली विशल्या मधुपर्ण्यपि।
मूर्वा देवी मधुरसा मोरटा तेजनी स्रवा।
मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि।
पाटाम्बष्ठा विद्धकर्णी स्थापनी श्रेयसी रसा।
एकाष्टीला पापचेली प्राचीना वनतिक्तिका।
कटुः कटम्भराशोकरोहिणी कटुरोहिणी।
मत्स्यपित्ता कृष्णभेदी चक्राङ्गी शकुलादनी।
आत्मगुप्ताजहाव्यण्डा कण्डूरा प्रावृषायणी।
ऋष्यप्रोक्ता शूकशिम्बिः कपिकच्छुश्च मर्कटी।
चित्रोपचित्रा न्यग्रोधी द्रवन्ती शम्बरी वृशा।
प्रत्यक्श्रेणी सुतश्रेणी रण्डा मूषिकपर्ण्यपि।
अपामार्गः शैखरिको धामार्गवमयूरकौ।
प्रत्यक्पर्णी केशपर्णी किणिही खरमञ्जरी।
हञ्जिका ब्राह्मणी पद्मा भर्गी ब्राह्मणयष्टिका।

अङ्गारवल्ली बालेयशाकबर्बरवर्धकाः।
मञ्जिष्ठा विकसा जिङ्गी समङ्गा कालमेषिका।
मण्डूकपर्णी मण्डीरी भण्डी योजनवल्ल्यपि।
यासो यवासो दुःस्पर्शो धन्वयासः कुनाशकः
रोदनी कच्छुरानन्ता समुद्रान्ता दुरालभा।
पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपर्ण्यङ्घ्रिवल्लिका।
क्रोष्टुविन्ना सिंहपुच्छी कलशी धावनी गुहा।
निदिग्धिका स्पृशी व्याघ्री बृहती कण्टकारिका।
प्रचोदनी कुली क्षुद्रा दुःस्पर्शा राष्ट्रिकेत्यपि।
नीली काला क्लीतकिका ग्रामीणा मधुपर्णिका।
रञ्जनी श्रीफली तुत्था द्रोणी दोला च नीलिनी।
अवल्गुजः सोमराजी सुवल्लिः सोमवल्लिका।
कालमेषी कृष्णफली बाकुची पूतिफल्यपि।
कृष्णोपकुल्या वैदेही मागधी चपला कणा।
उषणा पिप्पली शौण्डी कोलाथ करिपिप्पली।
कपिवल्ली कोलवल्ली श्रेयसी वशिरः पुमान्।
चव्यं तु चविका काकचिञ्चीगुञ्जे तु कृष्णला।
पलंकषा त्विक्षुगन्धा श्वदंष्ट्रा स्वादुकण्टकः।
गोकण्टको गोक्षुरको वनशृन्ङ्गाट इत्यपि।
विश्वा विषा प्रतिविषातिविषोपविषारुणा।
शृन्गी महौषधं चाथ क्षीरावी दुग्धिका समे।
शतमूली बहुसुताभीरूरिन्दीवरी वरी।

ऋष्यप्रोक्ताभीरुपत्रीनारायण्यः शतावरी।
अहेरुरथ पीतद्रुकालीयकहरिद्रवः।
दार्वी पचंपचा दारुहरिद्रा पर्जनीत्यपि।
वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका।
शुक्ला हैमवती वैध्यमातृसिंह्यौ तु वाशिका।
वृषोऽटरूषः सिंहास्यो वासको वाजिदन्तकः।
आस्फोटा गिरिकर्णी स्याद्विष्णुक्रान्तापराजिता।
इक्षुगन्धा तु काण्डेक्षुकोकिलाक्षेक्षुरक्षुराः।
शालेयः स्याच्छीतशिवश्छत्रा मधुरिका मिसिः।
मिश्रेयाप्यथ सीहुण्डो वज्रः स्नुक्स्त्री स्नुही गुडा।
समन्तदुग्धाथो वेल्लममोघा चित्रतण्डुला।
तण्डुलश्च कृमिघ्नश्च विडङ्गं पुंनपुंसकम्।
बला वाट्यालका घण्टारवा तु शणपुष्पिका।
मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा स्वाद्वी मधुरसेति च।
सर्वानुभूतिः सरला त्रिपुटा त्रिवृता त्रिवृत्।
त्रिभण्डीरोचनी श्यामापालिन्ध्यौ तु सुषेणिका।
काला मसूरविदलार्धचन्द्रा कालमेषिका।
मधुकं क्लीतकं यष्टिमधुकं मधुयष्टिका।
विदारी क्षीरशुक्लेक्षुगन्धा क्रोष्टी तु या सिता।
अन्या क्षीरविदारी स्यान्महाश्वेतर्क्षगन्धिका।
लाङ्गली शारदी तोयपिप्पली शकुलादनी।
खराश्वा कारवी दीप्यो मयूरो लोचमस्तकः
गोपी श्यामा शारिवा स्यादनन्तोत्पलशारिवा
योग्यमृद्धिः सिद्धिलक्ष्म्यौ वृद्धेरप्याह्वया इमे
कदली वारणबुसा रम्भा मोचांशुमत्फला
काष्ठीला मुद्गपर्णी तु काकमुद्गा सहेत्यपि
वार्ताकी हिङ्गुली सिंही भण्टाकी दुष्प्रधर्षिणी
नाकुली सुरसा रास्ना सुगन्धा गन्धनाकुली
नकुलेष्टा भुजंगाक्षी छत्राकी सुवहा च सा
विदारिगन्धांशुमती सालपर्णी स्थिरा ध्रुवा
तुण्डिकेरी समुद्रान्ता कार्पासी बदरेति च
भारद्वाजी तु सा वन्या शृङ्गी तु ऋषभो वृशः
गाङ्गेरुकी नागबला झषा ह्रस्वगवेधुका
धामार्गवो घोशकः स्यान्महाजाली स पीतकः
ज्योत्स्नी पटोलिका जाली नादेयी भूमिजम्बुका
स्याल्लाङ्गलिक्यग्निशिखा काकाङ्गी काकनासिका
गोधापदी तु सुवहा मुसली तालमूलिका
अजशृङ्गी विषाणी स्याद्गोजिह्वादार्विके समे
ताम्बूलवल्ली तम्बूली नागवल्ल्यप्यथ द्विजा
हरेणू रेणुका कौन्ती कपिला भस्मगन्धिनी
एलावालुकमैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम्
वालुकं चाथ पालङ्क्यां मुकुन्दः कुन्दकुन्दुरू
बालं ह्रीबेरबर्हिष्ठोदीच्यं केशाम्बुनाम च
कालानुसार्यवृद्धाश्मपुष्पशीतशिवानि तु
शैलेयं तालपर्णी तु दैत्या गन्धकुटी मुरा
गन्धिनी गजभक्ष्या तु सुवहा सुरभी रसा
महेरणा कुन्दुरुकी सल्लकी ह्लादिनीति च
अग्निज्वालासुभिक्षे तु धातकी धातुपुष्पिका।
पृथ्वीका चन्द्रवालैला निष्कुटिर्बहिलाथ सा।
सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुत्था कोरङ्गी त्रिपुटा त्रुटिः।

व्याधिः कुष्टं पारिभाव्यं वाप्यं पाकलमुत्पलम्।
शङ्खिनी चोरपुष्पी स्यात्केशिन्यथ वितुन्नकः।
झटामलाज्झटा ताली शिवा तामलकीति च
प्रपौण्डरीकं पौण्डर्यमथ तुन्नः कुबेरकः
कुणिः कच्छः कान्तलको नन्दिवृक्षोऽथ राक्षसी
चण्डा धनहरी क्षेमदुष्पत्रगणहासकाः
व्याडायुधं व्याघ्रनखं करजं चक्रकारकम्
सुषिरा विद्रुमलता कपोताङ्घ्रिर्नटी नली
धमन्यञ्जनकेशी च हनुर्हट्टविलासिनी
शुक्तिः शङ्खः खुरः कोलदलं नखमथाढकी
काक्षी मृत्स्ना तुवरिका मृत्तालकसुराष्ट्रजे
कुटन्नटं दाशपुरं वानेयं परिपेलवम्
प्लवगोपुरगोनर्दकैवर्तीमुस्तकानि च
ग्रन्थिपर्णं शुकं बर्हपुष्पं स्थौणेयकुक्कुरे
मरुन्माला तु पिशुना स्पृक्का देवी लता लघुः
समुद्रान्ता वधूः कोटिवर्षा लङ्कोपिकेत्यपि
तपस्विनी जटामांसी जटिला लोमशामिषी
त्वक्पत्रमुत्कटं भृङ्गं त्वचं चोचं वराङ्गकम्
कर्चूरको द्राविडकः काल्पको वेधमुख्यकः
ओषध्यो जातिमात्रे स्युरजातौ सर्वमौषधम्
शाकाख्यं पत्रपुष्पादि तण्डुलीयोऽल्पमारिषः
विशल्याग्निशिखानन्ता फलिनी शक्रपुष्पिका
स्याद्दक्षगन्धा छगलान्त्र्यावेगी वृद्धदारकः
जुङ्गो ब्रह्मी तु मत्स्याक्षी वयःस्था सोमवल्लरी
पटुपर्णी हैमवती स्वर्णक्षीरी हिमावती

हयपुच्छी तु काम्बोजी माषपर्णी महासहा
तुण्डिकेरी रक्तफला बिम्बिका पीलुपर्ण्यपि
बर्बराकबरी तुङ्गी खरपुष्पाजगन्धिका
एलापर्णीतु सुवहा रास्ना युक्तरसा च सा
चाङ्गेरी चुक्रिका दन्तशटाम्बष्ठाम्ललोणिका
सहस्रवेधी चुक्रोऽम्लवेतसः शतवेध्यपि
नमस्कारी गण्डकारी समङ्गा खदिरेत्यपि
जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा
कूर्चशीर्षो मधुरकः शृङ्गह्रस्वाङ्गजीवकाः
किराततिक्तो भूनिम्बोऽनार्यतिक्तोऽथ सप्तला
विमला सातला भूरिफेना चर्मकषेत्यपि
वायसोली स्वादुरसा वयःस्थाथ मकूलकः
निकुम्भो दन्तिका प्रत्यक्श्रेण्युदुम्बरपर्ण्यपि
अजमोदा तूग्रगन्धा ब्रह्मदर्भा यवानिका
मूले पुष्करकाश्मीरपद्मपत्राणि पौष्करे
अव्यथातिचरा पद्मा चारटी पद्मचारिणी
काम्पिल्यः कर्कशश्चन्द्रो रक्ताङ्गो रोचनीत्यपि
प्रपुन्नाडस्त्वेडगजो दद्रुघ्नश्चक्रमर्दकः
पद्माट उरणाख्यश्च पलाण्डुस्तु सुकन्दकः
लतार्कदुद्रुमौ तत्र हरितेऽथ महौषधम्
लशुनं गृञ्जनारिष्टमहाकन्दरसोनकाः
पुनर्नवा तु शोथघ्नी वितुन्नं सुनिषण्णकम्
स्याद्वातकः शीतलोऽपराजिता शणपर्ण्यपि
पारावताङ्घ्रिः कटभी पण्या ज्योतिष्मती लता
वार्षिकं त्रायमाणा स्यात्त्रायन्ती बलभद्रिका

विष्वक्सेनप्रिया गृष्टिर्वाराही बदरेत्यपि
मार्कवो भृङ्गराजः स्यात्काकमाची तु वायसी
शतपुष्पा सितच्छत्रातिच्छत्रा मधुरा मिसिः
अवाक्पुष्पी कारवी च सरणा तु प्रसारिणी
तस्यां कटंभरा राजबला भद्रबलेत्यपि
जनी जतूका रजनी जतुकृच्चक्रवर्तिनी
संस्पर्शाथ शटी गन्धमूली षड्ग्रन्थिकेत्यपि
कर्चूरोऽपि पलाशोऽथ कारवेल्लः कठिल्लकः
सुषवी चाथ कुलकं पतोलस्तिक्तकः पटुः
कूष्माण्डकस्तु कर्कारुरुर्वारुः कर्कटी स्त्रियौ
इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्तुम्ब्यलाबूरुभे समे
चित्रा गवाक्षी गोडुम्बा विशाला त्विन्द्रवारुणी
अर्शोघ्नः सूरणः कन्दो गण्डीरस्तु समष्ठिला
कलम्ब्युपोदिका स्त्री तु मूलकं हिलमोचिका
वास्तुकं शाकभेदाः स्युर्दूर्वा तु शतपर्विका
सहस्रवीर्याभार्गव्यौ रुहानन्ताथ सा सिता
गोलोमी शतवीर्या च गण्डाली शकुलाक्षका
कुरुविन्दो मेघनामा मुस्ता मुस्तकमस्त्रियाम्
स्याद्भद्रमुस्तको गुन्द्रा चूडालाचक्रलोचटा
वंशे त्वक्सारकर्मारत्वाचिसारतृणध्वजाः
शतपर्वा यवफलो वेणुमस्करतेजनाः
वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः
ग्रन्थिर्ना पर्वपरुशी गुन्द्रस्तेजनकः शरः
नडस्तु धमनः पोटकलोऽथो काशमस्त्रियाम्
इक्षुगन्धा पोटगलः पुंसि भूम्नि तु बल्वजाः
रसाल इक्षुस्तद्भेदाः पुण्ड्रकान्तारकादयः
स्याद्वीरणं वीरतरं मूलेऽस्योशीरमस्त्रियाम्
अभयं नलदं सेव्यममृणालं जलाशयम्
लामज्जकं लघुलयमवदाहेष्टकापथे
नडादयस्तृणं गर्मुच्छ्यामाकप्रमुखा अपि
अस्त्री कुशं कुथो दर्भः पवित्रमथ कत्तृणम्
पौरसौगन्धिकध्यामदेवेजग्धकरौहिषम्
छत्रातिच्छत्रपालघ्नौ मालातृणकभूस्तृणे
शष्पं बालतृणम् घासो यवसं तृणमर्जुनम्
तृणानां संहतिस्तृण्या नड्या तु नडसंहतिः
तृणराजाह्वयस्तालो नालिकेरस्तु लाङ्गली
घोण्टा तु पूगः क्रमुको गुवाकः खपुरोऽस्य तु
फलमुद्वेगमेते च हिन्तालसहितास्त्रयः
खर्जूरः केतकी ताली खर्जुरी च तृणद्रुमाः

इति वनौषधिवर्गः

इकाई - 6

ऋग्वेद का औषधिसूक्त

'या ओषधीः' इति त्रयोविंशत्यृचं सप्तमं सूक्तम् । अथर्वणः पुत्रस्य भिषङ्नाम्न आर्षम् । अनुष्टुभमौषधिदेवताकम् । तथा चानुक्रान्तं----' या औषधीस्त्र्यधिकाथर्वणो भिषगोषधिस्तुतिरानुष्टुभम्' इति । दीक्षितानां ज्वराद्युपतापे संजातेऽनेन सूक्तेन मार्जयेत् । सूत्रितं च-- ओषधिसूक्तेन चाप्लाव्यानुमृजेत्' (आश्व. श्रौ. ६. ९) इति ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥१

"याः ओषधीः ओषधयः "पूर्वाः पुरातन्यः "जाताः उत्पन्नाः । केभ्यः सकाशात् । "देवेभ्यः जगन्निर्मातृभ्यः । यद्वा । देवा द्योतमाना ऋतवः । तेभ्यः। कस्मिन् काले। "त्रियुगं त्रिषु युगेषु । विशेषेण प्रादुर्भावापेक्षया कृतादियुगत्रयमुक्तं कलौ त्वत्यन्ताल्पत्वादुपेक्षितम् ।.अथवा त्रिषु युगेषु वसन्ते प्रावृषि शरदि चेत्यर्थः । "अहं बभ्रूणां बभ्रुवर्णानां सोमाद्योषधीनां "शतं "सप्त "च "धामानि अनुलेपमार्जनाभिषेकादिरूपेणाश्रयभूतानि स्थानानि "नु क्षिप्रं मनै मन्ये । संभावयामीत्यर्थः । अत्र वाजसनेयकं-'या औषधीः पूर्वं जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरेत्यृतवो वै देवास्तेभ्य एतास्त्रिः पुरा जायन्ते वसन्ते प्रावृषि शरद मनै नु बभ्रूणामहमिति सोमो वै बभ्रुः सोम्या ओषधय औषधः पुरुषः शतं धामानीति यदिदं शतायुः शतार्घः शतवीर्य एतानि हास्य तानि' शतं धामानि सप्त चेति । य एवेमे सप्त शीर्षन्प्राणास्तानेतदाह' (श. ब्रा. ७. २. ४. ३६) इति । अत्र निरुक्तं च--' या औषधयः पूर्वं जाता देवेभ्यस्त्रीणि युगानि पुरा मन्ये नु तद्बभ्रूणामहं बभ्रुवर्णानां भरणानां हरणानामिति वा शतं धामानि सप्त चेति । धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति । जन्मान्यत्राभिप्रेतानि सप्तशतानि सप्त शतं पुरुषस्य मर्मणां तेष्वेना दधति' (निरु. ९.२८) इति॥

जो ओषधियां प्राचीन काल में तीन युगों में देवों से उत्पन्न हुई हैं, मैं मानता हूं कि वे पीले रंग की ओषधियां एक सौ सात स्थानों में स्थित हैं ।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२

हे “अम्ब मातर ओषधयः “वः युष्माकं “धामानि स्थानानि जन्मानि वा “शतम् अपरिमितानि। “उत अपि च “वः युष्माकं “रुहः प्ररोहः प्रोद्गमः “सहस्रम् अपरिमितः। “अध अपि च हे “शतक्रत्वः शतकर्माणः “यूयमिमं “मे मां मदीयं वा जनमामयग्रस्तम् “अगदम् । गदो रोगः । तद्रहितं “कृत कुरुत॥

हे माता के समान ओषधियो ! तुम्हारे जन्म सौ एवं तुम्हारे प्ररोहण हजार हैं. हे सौ कर्मों वाली ओषधियो! तुम मुझे निरोग करो ।

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।

अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥३

हे “ओषधीः ओषधयः “प्रति “मोदध्वं इमं रुग्णं प्रति मुदिता हृष्टा भवत । कीदृश्यो यूयम् । “पुष्पवतीः पुष्पवत्यः “प्रसूवरीः । प्रकर्षेण सूयन्त उपभोगायेति प्रसवाः फलानि तद्वत्यः । किंच “अश्वाइव अश्वुवाना हया इव “सजित्वरीः सह रोगं जयन्त्यः “वीरुधः विरोहन्त्यः “पारयिष्ण्वः रुग्णं पुरुषं पारयन्त्यो रोगात् ॥

हे फूल और फल वाली ओषधियो! तुम इस रोगी के प्रति प्रसन्न बनो. तुम अश्वों के समान जयशील, उत्पन्न होने वाली एवं रोगियों को रोगों से पार करने वाली हो ।

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।

सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४

हे “ओषधीः ओषधयः “देवीः देव्यो द्योतनादिगुणका हे “मातरः जनानां मातृभूताः । मातृवद्धितकारित्वान्मातृत्वोपचारः। अथवा मातर आरोग्यनिर्मात्र्यः “वः युष्माकं संबन्धिनं भिषजं “तत् वक्ष्यमाणम् “इति इत्थम् “उप “ब्रुवे उप ब्रवीमि । किं तदिति चेत् उच्यते । ओषध्यर्थमहम् “अश्वं “गां “वासः अंशुकं किं बहुना "आत्मानम् अपि हे पुरुष चिकित्सक “तव तुभ्यं “सनेयं ददामि ॥

हे माता के समान दिव्य ओषधियो! मैं तुम्हारे संबंधी वैद्य से इस प्रकार कहता हूं-"हे चिकित्सक ! मैं तुम्हें घोड़ा, गाय, वस्त्र एवं स्वयं को दे सकता हूं" ।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।

गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥५

हे ओषधिदेवताः “वः युष्माकम् अश्वत्थे “निषदनं नितरां वर्तनम् । तथा “वः युष्माकं “पर्णे पलाशे “वसतिः निवासः “कृता । तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत्तं गायत्र्याहरत्तस्य पर्णमच्छिद्यत तत्पर्णोऽभवत् तत्पर्णस्य पर्णत्वम्' (तै. ब्रा. १. १. ३. १०) इति ब्राह्मणात्पलाशस्य पर्णत्वप्रसिद्धिः । अश्वत्थपलाशयोर्यज्ञयोग्यत्वप्राधान्यापेक्षयोपादानम् । किंच “गोभाज “इत्किल गवां भाजयित्र्य एव “असथ भवथ खलु । “यत् यदि “सनवथ संभजध्वे “पुरुषं तर्ह्येवं भवथेति । ‘वन षण संभक्तौ । लेट्यडागमः । व्यत्ययेनोप्रत्ययः । यद्वा । औत्सर्गिकः शप्चेति द्विविकरणता ॥

हे ओषधियो! तुम पीपल के वृक्ष पर रहती हो एवं पलाश वृक्ष पर तुम्हारा निवासस्थान है. जब तुम रोगी पुरुष पर कृपा करती हो, तब तुम गाय पाने की अधिकारिणी बनती हो ।

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।

विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥६

“यत्र यस्मिन् देशे “ओषधीः ओषधयः “समग्मत संगच्छन्ते । “राजानः “समिताविव संग्रामे यथा संगता भवन्ति तद्वत् । तासां नानाविधानामोषधीनां संगमनं यस्मिन् देशेऽस्ति तत्र “विप्रः प्राज्ञः ब्राह्मणः “सः “भिषक् उच्यते “रक्षोहा रक्षोहन्ता । "अमीवचातनः। अमीवा व्याधिः । तस्य चातनश्चातयिता नाशयिता च भवति तदानीम् ॥

युद्ध में एकत्र होने वाले राजा लोगों के समान जिस व्यक्ति के पास सभी ओषधियां होती हैं, उसे ब्राह्मण या भिषक् कहते हैं. वह रोगों का नाश करता है ।

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।

आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७

अश्वावत्यादयः प्रधानभूता ओषधयश्चतस्रः। ताः सर्वा “ओषधीः "आवित्सि आजाने । स्तौमीत्यर्थः । “अस्मा “अरिष्टतातये । अमुं रोगं विनाशयितुमित्यर्थः ॥

मैं इस रोग का विनाश करने के लिए अश्ववती, सोमवती, ऊर्जयंती, उदोजस आदि सभी ओषधियों की स्तुति करता हूं ।

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।

धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८

"ओषधीनां "शुष्माः बलानि "उत् ईरते उद्गच्छन्ति । रुग्णे स्ववीर्यं प्रोद्गमयन्तीत्यर्थः । "गावो "गोष्ठादिव । ता यथा ततः सकाशादुदीरते तद्वत् । कीदृशीनामोषधीनाम्। उच्यते । "धनं स्वसामर्थ्यलक्षणं "सनिष्यन्तीनां दातुमिच्छन्तीनाम् । किं प्रतीति उच्यते । हे "पूरुष पुरुष रोगग्रस्त "तव "आत्मानं शरीरं प्रति । यद्वा । प्ररोहन्तीरोषधीर्दृष्ट्वा वदति । हे पुरुष प्रियङ्ग्वाद्योषधिस्वामिन् तवात्मानं वर्धयितुं धनं सनिष्यन्तीनां व्रीह्याद्योषधीनां शुष्मा उदीरते ॥

हे रोगी पुरुष ! ओषधियों से बल उसी प्रकार बाहर निकलता है, जिस प्रकार गोशाला से गाएं बाहर जाती हैं. ये ओषधियां तुम्हें स्वास्थ्यरूपी धन देती हैं ।

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।

सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९

हे ओषधयः "वो "माता जननी "इष्कृतिर्नाम् । सर्वेषां रुग्णानां निष्कर्त्रीति प्रसिद्धा । यस्मात्सा रुग्णं निष्करोति । "अथ अतो "यूयम् अपि "निष्कृतीः निष्कृतयः "स्थ भवथ। किंच यूयं "सीराः सरणशीलाः पतत्रिणीः "पतनवत्यश्च "स्थन भवथ। 'तप्तनप्' इति तनादेशः । किंच पुरुषः "यत् यदि "आमयति व्याधितो भवति तं "निष्कृथ संस्कुरुथ ॥

हे ओषधियो ! तुम्हारी माता का नाम इष्कृति अर्थात् रोगविनाशिका है, इसलिए तुम भी इष्कृति हो. तुम रोग को बाहर निकालने वाली एवं पतनयुक्त हो. तुम रोगी को स्वस्थ करो ।

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।

ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥१० ॥

"विश्वाः व्याप्ताः "परिष्ठाः परितः स्थिता ओषधयः "अति "अक्रमुः व्याधीनतिक्रान्तवत्यः । "स्तेनइव "व्रजम् । यथा स्तेनो व्रजमत्यक्रमीत् तद्वत् । तथा कृत्वा "ओषधीः ओषधयः "प्राचुच्यवुः प्रच्यावयन्ति "यत्किं "च "तन्वः रुग्णशरीरस्य "रपः पापं व्याधिलक्षणमस्ति तदिति ॥

सर्वत्र व्याप्त एवं सब ओर स्थित ओषधियां रोगों को इस प्रकार लांघ जाती हैं, जिस प्रकार चोर गोशाला को लांघ जाता है. शरीर में जो भी व्याधि होती है, उसे ओषधियां नष्ट करती हैं ।

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।

आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११

“अहं “यत् यदि “इमाः ओषधीः "हस्त "आदधे आधारयामि । किं कुर्वन् । “वाजयन् रुग्णं बलिनं कुर्वन् । ततः “पुरा "यक्ष्मस्य रोगस्य “आत्मा “नश्यति नष्टो भवति “जीवगृभो "यथा । जीवानां शकुन्यादीनां ग्राहकाद्याधाद्यथा जीवा नश्यन्ति तद्वत् । यद्वा । जीवगृभो मृत्योः सकाशाज्जीवोऽपह्रियते तद्वत् ॥

जब में रोगी को शक्तिशाली बनाता हुआ इन ओषधियों को हाथ में लेता हूं, तब रोग की आत्मा उसी प्रकार नष्ट होती है, जैसे मृत्यु से जीव नष्ट हो जाता है ।

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।

ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२

हे “ओषधीः ओषधयः “यस्य रुग्णस्य “अङ्गमङ्गं यद्यदङ्गं परुःपरुः यद्यत्पर्व “प्रसर्पथ प्रकर्षेणाश्रयथ “ततः अङ्गात्पर्वणश्च “यक्ष्मं व्याधिं “वि “बाधध्वे । “उग्रः उद्गूर्णबलः “मध्यमशीः मध्यमस्थाने वर्तमानो राजा यथा उपद्रवकारिणः समनन्तरशत्रून् पदे पदे विबाधते तद्वत् ॥

हे ओषधियो ! तुम जिसके अंगअंग एवं गांठगांठ में आश्रय लेती हो, उसके शरीर से रोग इस प्रकार दूर कर देती हो, जिस प्रकार शक्तिशाली राजा चोर को देश से निकाल देता है ।

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।

साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३

हे अस्मदीयस्य पुरुषस्य शरीराधिष्ठायिन् “यक्ष्म व्याधे त्वं “साकं सहैव “प्र “पत प्रकर्षेण शीघ्रं गच्छ। केन साकमिति । उच्यते । “चाषेण अतिशीघ्रं पतता चाषाख्येन पक्षिणा सह । तथा “किकिदीविना पक्षिणा च सह । तथा “वातस्य शीघ्रं गच्छतो वायोः “ध्राज्या। 'ध्रज गतौ' । गत्या वेगेन सह गच्छ। तथा “निहाकया गोधिकया “साकं “नश्य नाशं प्राप्नुहि ॥

हे व्याधि ! तुम नीलकंठ, बाज, वायु अथवा गोह के समान रोगी के शरीर से जल्दी दूर चली जाओ ।

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।

ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥१४

हे ओषधयः “वः युष्माकं मध्ये “अन्या ओषधिः “अन्याम् ओषधिम् अवतु प्राप्नोतु । अवतिरत्र गत्यर्थः । तथा अन्यान्यस्याः समीपम् “उपावत उपगच्छत । एवं याः सन्ति क्षित्यामोषधयः “ताः

"सर्वाः संविदानाः परस्परमैकमत्यं प्राप्ताः सत्यः "इदं "मे मदीयं "वचः प्रार्थनालक्षणं वचनं "प्रावत प्ररक्षत ॥

हे ओषधियो! तुम में से पहली दूसरी के और दूसरी तीसरी के पास जावे. इस प्रकार सब ओषधियां मिलकर मेरे वचन की रक्षा करें ।

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।

बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५

"याः "फलिनीः फलवत्यः "या "अफलाः फलवर्जिताः याः "अपुष्पाः पुष्परहिताः "याश्च "पुष्पिणीः पुष्पवत्यः "बृहस्पतिप्रसूताः । बृहस्पतिर्मन्त्राभिमानी देवः । तेनानुज्ञाताः। "ता "नः अस्मान् "अंहसः "मुञ्चन्तु मोचयन्तु ॥

बृहस्पति से उत्पन्न फलसहित, फलरहित, पुष्परहित एवं पुष्पयुक्त ओषधियां हमें रोग से बचावें।

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३ दथो वरुण्यादुत ।

अथो यमस्य पड्बीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥१६

"मा माम् ओषधयः "शपथ्यात् शपथसंजातादेनसः सकाशात् "मुञ्चन्तु । "अथो अपि च "वरुण्यात् वरुणसंभवात् "मां मुञ्चन्तु । वरुणोऽपि स्वपाशेन जातमात्रं पुरुषं बध्नाति । "उत इति पूरणः। "अथो अपि च "यमस्य पड्बीशात् पादबन्धनान्निगडान्मुञ्चन्तु । न केवलं वरुणादेः पापात् किंतु "सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् देवैः कृतात्पापान्मुञ्चन्तु ॥

ओषधियां मुझे झूठी कसम खाने के पाप से, वरुण के पाश से, यम की बेड़ी से एवं सभी देवों के पाश से बचावें ।

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि ।

यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७

"दिवः द्युलोकात "अवपतन्तीः अवपतन्त्यः "ओषधयः इत्थं "परि "अवदन् । किमिति उच्यते। "यं "जीवं जीवन्तम् "अश्नवामहै व्याप्नुमः "न "सः "पूरुषः पुरुषः "रिष्याति रिष्यति विनश्यति ॥

ओषधियों ने स्वर्ग से नीचे उतरते समय कहा था कि हम जिस जीवित व्यक्ति में प्रवेश कर जाती हैं, वह नष्ट नहीं होता ।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।

तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥१८

"या "ओषधीः ओषधयः "सोमराज्ञीः सोमो राजा स्वामी यासां तास्तथोक्ताः "बह्वीः असंख्याताः "शतविचक्षणाः बहुदर्शना हे सोमाख्ये ओषधे "तासाम् ओषधीनां "त्वम् "उत्तमा "असि। यस्मादेवं तस्मात् "अरम् अलमत्यर्थं "कामाय कान्ताय "हृदे हृदयाय "शं सुखकरी भवेति शेषः ॥

हे ओषधि ! जो ओषधियां सोम राजा की प्रजा हैं, अगणित एवं अति कुशल हैं, तुम उन में उत्तम हो. तुम अभिलाषा को पूर्ण करके मन को शांति दो

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।

बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥१९

"या "ओषधीः ओषधयः "सोमराज्ञीः "पृथिवीमनु "विष्ठिताः विविधं स्थिताः दिवः सकाशादागत्य पृथिव्यां नानाभेदेन स्थिताः "बृहस्पतिप्रसूताः बृहस्पतिनानुज्ञाताः सत्यो यूयम् "अस्यै रुग्णतन्वे "वीर्यं "सं दत्त संधत्त ॥

जो ओषधियां ! सोम राजा की प्रजा हैं, स्वर्ग से आकर धरती पर फैली हैं एवं वृहस्पति से उत्पन्न हैं, वे इस रोगी को शक्ति दें ।

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।

द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥२०

हे ओषधयः वः युष्मान् मा "रिषत् मा हिंस्यात् । कः । "खनिता भूमेः खननकर्ता । "यस्मै रुग्णाय "चाहं "खनामि "वः युष्मान् । किंच "अस्माकं संबन्धि "द्विपत् पुत्रभृत्यादिकं "चतुष्पत् गोमहिष्यादिकं च यदस्ति तत् "सर्वम् "अनातुरम् अरोगम् अस्तु ।

हे ओषधियो ! मैं तुम्हारा खोदने वाला हूं. तुम मुझे नष्ट मत करना. मैं जिनके लिए तुम्हें खोदता हूं, उसे भी नष्ट मत करना. हमारे दो पैर एवं चार पैरों वाले जीव रोगरहित हों ।

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।

सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥२१

"याश्च ओषधयः "इदं स्तोत्रम् "उपशृण्वन्ति "याश्च ओषधयः "दूरं "परागताः "सर्वाः "वीरुधः "संगत्य संगताः सत्यो हे वीरुधः "अस्यै रुग्णतन्वे "वीर्यं "सं "दत्त ॥

जो ओषधियां मेरा यह स्तोत्र सुन रही हैं अथवा जो दूर चली गई हैं, वे सब एकत्र होकर इस रोगी को शक्ति दें ।

ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि ॥२२

"ओषधयः सर्वाः "सोमेन "राज्ञा "सह "सं वदन्ते संवादं कुर्वन्ति । किमिति तदुच्यते । "यस्मै रुग्णाय "ब्राह्मणः ओषधिसामर्थ्यज्ञो ब्राह्मणो वैद्यः "कृणोति करोति चिकित्सां "तं रुग्णं हे "राजन् "पारयामसि पारयामः ॥ इदन्तो मसिः ।।

ओषधियां राजा सोम के साथ इस प्रकार बातचीत करती हैं- "हे राजा! स्तोता ब्राह्मण जिसका इलाज करता है, हम उसीको बचाती हैं " ।

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।

उपस्तिरस्तु सो३ऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥२३

हे "ओषधे सोमाख्ये "त्वम् ओषधीनामन्यासाम्' "उत्तमासि । "तव "वृक्षाः सर्वे "उपस्तयः अधःशायिन एव । तथा सति "सः "उपस्तिरस्तु अधःशायी भवतु "योऽस्मान् "अभिदासति अभिहिनस्ति भ्रातृव्य इति ॥

हे ओषधियो ! तुम सबसे श्रेष्ठ हो. सभी वृक्ष तुमसे निम्न हैं. जो हमें हानि पहुंचाता है, वह हमसे नीचा बने ।

सहायक ग्रन्थसूची –

- वेद् एवं उपनिषद्
- ज्ञानभैषज्यमञ्जरी, गुमानीकविविरचित, रामकरणशर्मा, नाग पब्लिशर जवाहर नगर दिल्ली-110007
- अष्टाङ्गहृदय
- चरक संहिता
- आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, आचार्य बालकृष्ण दिव्य प्रकाशन(दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट पंतजलि योगपीठ, महर्षि दयानन्द ग्राम दिल्ली- हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग, निकट बहादरराबाद, हरिद्वार।
- अष्टाङ्गहृदय, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
- भावप्रकाश, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी

राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालयों
वेद पाठशालाएँ तथा गुरु-शिष्य परम्परा इकाइयाँ

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

Vedavidya Marg, Chintaman Ganesh, Post. Jawasia, Ujjain 456006 (M.P.)

दूरभाष/Phone : (0734) 2502255, 2502254

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, Website - www.msrvvp.ac.in